BAIRAGHY SHATTEK

श्रीः ।

श्रीभर्तृहरिकृत

वैराग्यशतक ।

पञ्चनदस्थकविवरश्रीहरदयालकृतपद्यात्मक-
भाषाटीकासहित.

काशीस्थनिर्मल पं० स्वामिगोविन्दसिंहकृत
विषमपदटिप्पणोपेत ।

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,

मालिक-" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " स्टीम-प्रेस.

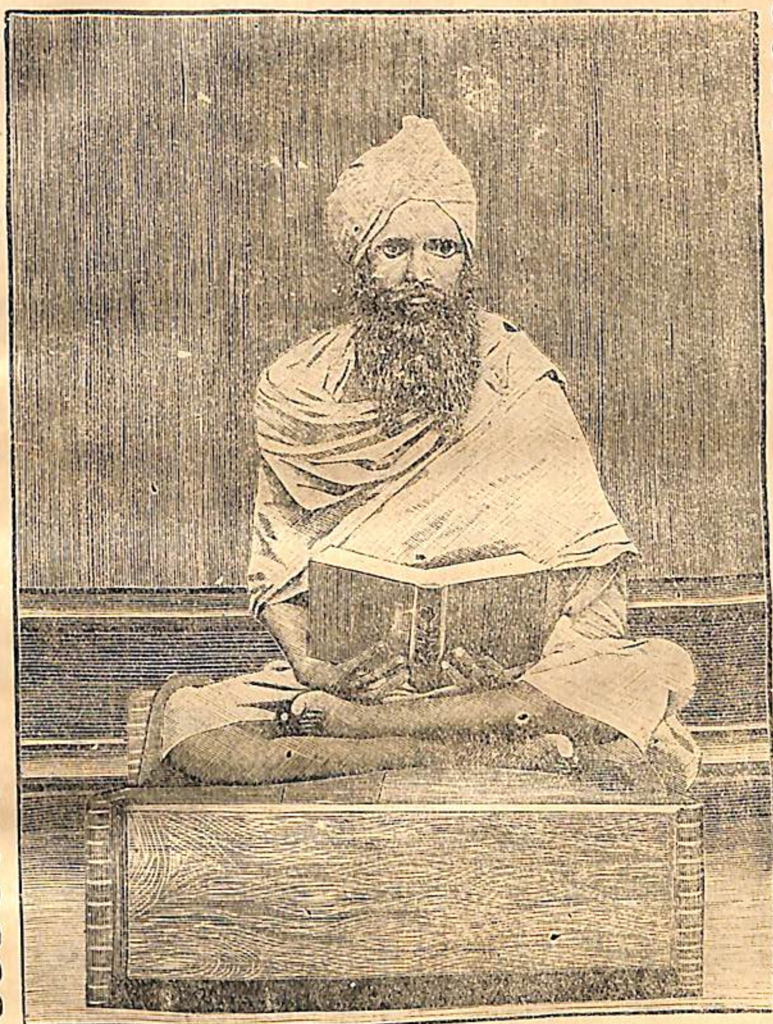
कल्याण-बंबई.

संवत् १९९०, शके १८५५.

मुद्रक और प्रकाशक-

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास

मालिक-" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " स्टीम्-प्रेस, कल्याण-बंबई.



काशीनिवासी निर्मल पं०स्वामीगोविन्दसिंहसाधुः

ॐ

प्रस्तावना.

इस अविचारित सुखलेशलसित दुःखबहुल संसारमें प्राणिमात्रको दुःख प्रायः दो तरहका देखनेमें आता है, एकका स्थूल शरीरहीमें प्रायः भान होता है जैसे वातपित्तादिके प्रकोपसे ज्वरादि और दूसरा दुःख मानसिक है जैसे राग द्वेष ईर्षादि इस उभयविध दुःखके प्रतिकारक चिकित्सकभी इस हमारे पवित्र देशमें अनेक महामान्य ऋषि महर्षि तथा मुनि महामुनि हो चुके हैं । जैसे प्रथम दुःखके प्रतिकारक महर्षि पतञ्जलि महर्षि धन्वन्तरि इत्यदि अनेक हुए हैं । एवं द्वितीय दुःखके दमनकर्ता व्यास, वसिष्ठ, वामदेवादि अनेक हुए हैं । इन उभयविध दुःखप्रतिकारक महात्माओंने उभयत्र दुःख प्रतिकारक चिकित्सा ऐसी पूर्णरूपसे लिखी है कि, तत्पश्चात्भावी विद्वान्गणको अद्यावधि उसकी अपूर्तिका कभी सन्देहतक भी नहीं हुआ कारण इसमें यह है कि वे महर्षिलोग महायोगी दीर्घदर्शी तथा परमज्ञानी थे । जो कुछ उन्होंने लोकोपकारार्थ विचार किया है वह सब योगबलके प्रभावसे पूर्णही किया है। अतएव आधुनिक पुरुष उनका अपूर्ति पूर्ण तो क्या करेगा उनके किये विचारमें इसका चंचु प्रवेश होनाही बहुत कठिन है । उक्तमहर्षि सिद्धान्तानुकूल यदि किसी आधुनिकका किसी एक अंशमें लिखनेका साहसभी होता है तो वह

इसकी किंचित्‌ज्ञतासे ऐसा भद्दा लिखाजाता है कि उसको सिवाय मूर्खके किसी विचारशील पुरुषको देखनेकी श्रद्धाही नहीं होती कारण इसमें यही है कि, वह लिखनेवाला स्वयंही महर्षिके सिद्धान्तका मर्म्मज्ञ नहीं है। यद्यपि ऐसे २ व्यर्थ कागज काले कर २ के मरजानेवाले अनेक होचुके हैं तथापि उनमें एक आधुनिक मानसिक चिकित्सकका लेख, ऐसा सम्भावित तथा परीक्षक मण्डलीमें समादरणीय है कि, पशुप्राय प्राणीके सिवाय कौन वह पुरुष जो उसके सर्वप्रिय सदुपदेशको श्रवण कर अपने शिरको अकस्मात् न फिरावे। यदि कोई पूँछै कि ऐसा आधुनिक कौन हुआ है तो हम उसको यही उत्तर देते हैं कि एकही जगत् प्रख्यात महाराजाधिराज योगिराज भर्तृहरिजी। क्यों न हो इनके परीक्षितार्थविबोधक विमल वचनोंका विज्ञमण्डलमें समादरणीय होना उचित ही है। क्योंकि अनुभव इनका भोगतृष्णातुर साधारण पुरुषोंकी तरह साधारण नहीं है किन्तु सांसारिक सम्पूर्ण ऐश्वर्य वैभवसे क्रीत असाधारण हैं। अनेक प्रकारके मानसिक सन्तापकी जिस २ विचाररूपी औषधिको उक्त योगिराजने स्वयं अनुभूत कर लिखा है वह ऐसे उत्तम ढंगसे कहा है कि रुग्ण अधिकारीको सुनतेही आरामका सूचक रोमांच हुए विना नहीं रहता। उक्त योगिराजने अपने मनोहर वचनोंका शतक कहा है, तथा उसको लोक उपकारक जान अनेक सज्जन पुरुषोंने संस्कृत तथा भाषामें कई

एक व्याख्यानोंसे भूषितभी किया है. उनही व्याख्यानोंमेंसे एक पञ्चनददेशनिवासी कविवर हरदयाल कृत व्याख्या वर्तमान कालमें विरक्त सज्जनगणमें अधिक समादरणीय है। उचितही है उक्त कविराजने योगिराजके वचनोंको भाषा-काव्यमें ऐसा प्रगट किया है कि जिसको फिर २ बाँचकरभी पाठक पुरुषके चित्तमें संतोष नहीं होता प्रत्युत ऊपर नीचे उभयत्र देखकर संदेह पैदा होता है कि, योगिराज ऐसा बोला था या ऐसा ?

वैराग्य जैसे सूखे विषयको लेकर भी अपने काव्यको अलंकारों तथा रसोंसे पूरित दिखलाना कोई साधारण पुरुषका काम नहीं है परंतु उक्त कविकी लोक भाषाकी कविता अपनेपर विरक्तोंको भी सरक्त करती हुई अपनी कर्ता स्वामीकी तथा अपने सर्वरूपसे निष्कलंकताकी बोधिका है । योगिराजने अपने शतकमें प्रायः १३ विषयोंपर लिखा है । भाषाकारने प्रत्येक विषयकी समाप्ति पर अध्याय नियत किया है ।

इनमें प्रथमाध्यायमें स्वमनको शिक्षा है १. दूसरेमें अपने बुरे स्वभावकी निन्दा तथा पश्चात्ताप है २. तीसरेमें कालकी महिमा है ३. चौथेमें अपने चित्तकी उत्कंठा तथा शंभुके आगे प्रार्थना है ४. पञ्चममें विधाताको उपालम्भ दिये हैं ५. षष्ठमें सत्पुरुषोंके गुण कहे हैं ६. सातवेंमें तीन राजाओंके साथ वार्तालाप हैं ७. आठवेंमें राजाओंके अभिमानकी निन्दा

करी है ८. नववेंमें अपनी अज्ञदशाका स्मरण है ९. दशवेंमें सबको साधारण उपदेश है १०. ग्यारहवेंमें स्त्रीकी निन्दा है ११. बारहवेंमें वृद्धावस्थाकी निन्दा है १२. तेरहवेंमें संकीर्ण उपदेश है १३. इन तेरह विषयोंका प्रदर्शक यह छोटासा ग्रन्थ उभय भाषाओंसे भूषित मानो उक्त विषयोंका चित्र है अत एव साधारणरूपसे सकल सुज्ञसमाजमें तथा विशेष रूपसे साधु समाजमें इसको सत्कृतिपूर्वक प्रचलित देख-कर मैंनैभी सज्जनसमाजके सेवाभागके भागी बननेके लिये तथा महात्माओंके वचनोंको प्रकाश कर पुण्य विशेषके लाभके लिये काशीनिवासी निर्मल पं० स्वामी गोविन्दसिंहजीसे शुद्ध कराय तथा कठिन स्थलोंमें टिप्पणी कराकर पवित्र पुस्तकाकार छापकर सज्जनगणकी सेवामें नियुक्त किया है । इति शम्.



ॐ

वैराग्यशतक।

पद्यात्मक–

भाषानुवादसहित।

श्लोकः।

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानंतचिन्मात्रमूर्तये ॥
स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे
॥ १ ॥ चूडोत्तंसितचारुचन्द्रकलिकाचञ्च-
च्छिखाभास्वरोलीलादग्धविलोलकामशा-
लभश्श्रेयोदशाग्रे स्फुरन् ॥ अन्तःस्फूर्ज-
दपारमोहतिमिरप्राग्भारमुच्चाटयन् चेतः
सद्मनियोगिनां विजयते ज्ञानप्रदीपो हरः ॥२

दोहा।

दुरद बदन दुरजन दलन, मदन कदन शिवनंद।
एक रदन सुखसदनके, पाद पद्म प्रति वंद ॥ १ ॥

सवैया।

जिहि शेषकि सेजपै शैनकियो, पदकोमलको मलती कमलाहीं। करमें दर[1] चक्र सरोज गदा, भृगुपाद[2] गरे

---

१ शंख। २ वक्षस्थलमें भृगुलत्ता।

स्रक्[1] अंगदबाहीं॥जिहिं पादको वारि[2] सुचारु[3] विचार धऱ्यो त्रिपुरारि[4] सदा शिरमाहीं ॥ असरूप[5] जिसे उरभीतरहै भवभी[6] तरहै कछु ता उर नाहीं ॥ २ ॥

अब दो श्लोकों करके मंगलाचरणको कहता हूँ-

दोहा ।

शांत प्रकाश स्वरूप प्रति, नमो सर्वदा होय ।
सृष्टि स्थिति लय क्षोभविन, रवि शशि भासकसोय॥३॥
दिक्कालादि प्रच्छेद बिन, चिदानंतवपु जोय ।
स्वानुभवैक प्रमाण तिहँ, नमो काव्य इति होय ॥ ४ ॥

अथ शिवोपमा-तोटक छन्द ।

हरज्ञानप्रदीपसदालसके । मन मंदिरयोगिनके बसके ॥
बहुमोहउदैजुहदैतिनके । तमपुंजवहीतिहँकोहनके॥५॥
पुनिलोलअनंगपतंगमहा । क्षणमाहिंस्वभावकताहिंदहा॥
निहकामसमूहगुणाग्रदिपै । सुसनेहसनेहवहीअरपै ॥ ६ ॥
जिनकेअतिभालकिभागभले । असदीपकतामनधामजले ॥
जिहँभूषणभालमयंकसही।कालिकाकलदूजकलंकनहीं ।७

---

१ भुजाओंमें भवँटा । २ गंगाजल । ३ पवित्र । ४ शंकर । ५ शेषशायी भगवान्का । ६ संसारका भय । ७ चिदात्माके व्यापक होनेसे देशसे अन्त नहीं है नित्य होनेसे कालसेभी अन्त नहीं है, चिदात्माहीको सर्वरूप होनेसे वस्तुसेभी अन्त नहीं हैं ऐसे तीन प्रकारके प्रच्छेद (भेद) से रहित चिदानन्तस्वरूप ब्रह्म अपना आप है ।

बिंबतासशिखासुप्रकाशसमं।दिनरातिविभाति प्रशांततमं
पुनतीनगुणोंयुतदेवत्रये । हगतीनाकिनैनामिऐनक्रये ॥८॥
सतसंगवसे हरि नेत्रसजे । सरजो अजलोचन दूज सजे ॥
आगनाक्षविषेनिजहैसतमो ।भवपालग्रसेअसईशनमो॥९॥

दोहा ।

भरत शतक वैरागको, भाषकार हरियाल ।
केवल प्रेम हुलास उर, लखनै कविनकी चाल ॥१०॥
अरथ वरन वृत वरन युत, भूप वचन शिव ऊप ।
बालव्याहकी गालि सम, दूषण भूषण रूप ॥ ११ ॥

कवित्त ।

सोम नाम विप्र वर गिरिजाके वर कर,
लीनो सुधाफल कर दीनो नरनाहके ।
भूपति स्वपतनीको राणी निज मीतहीके,
ताने दीनो गीतकीको नीको फल चाहके ॥
आगे गणिका सरागे धरापति आगे धरा,
नरनाथ माथ धुना सुनधुना ताहके ।
हाहा कामिनीके हित हते कामिनीके अब,
ताहि तजों ताहि भजों शीश शशि जाहके॥१२॥

---

१ विष्णु । २ ब्रह्मा । ३ लाहौरके रहनेवाले कविलोगोंकी अथवा लेशमात्र । ४ यद्यपि मेरे कथनमें अर्थ वर (श्रेष्ठ) नहीं है तथा (वृत्त) छन्द भी वर नहीं है तथापि शिवजीकी उपमावाले राजाके वचनोंका उश्था है ।

श्लोकः ।

यां चिन्तयाम्यनुदिनं मयि सा विरक्ता
साप्यन्यमिच्छति नरं स नरोन्यसक्तः ॥
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च॥३॥

सवैया ।

जिनको नित मैं चितमो चितमो, तिनकी रतिमो तनमाहिं रतीना। वह आन पुमान कि संग रती पुनि, ता मनमें गणिका गृहकीना ॥ धिक है अबला[1] भृत[2] कंद-र्पै[3] अरु, मोहिं धिकार जु मारै[4] अधीना ॥ इति रीति समूह कि प्रीति तजी, नृपहोय युगीश्वरईश्वरचीना॥१३॥

दोहा ।

भन्यो भूप वैराग्य शत, निज मन शिक्षा हेतु ।
सुनोजनो शुभगिरातिहँ, जगतजलधि[5] महि सेतु[6]॥१४॥

सोरठा ।

अतिनदवत गंभीर, श्रीहरिभर्तृ विरागशत ।
जन्म मरण भय नीर, विकसत कमल श्लोकगण॥१५॥

कवित्त ।

दोषदृष्टि[7] नालि गुरु दल पद लघुपर,
अंकमात्रा तरीतर अरथ सुवास है ।

---

१ स्त्री । २ नौकर । ३, ४–कामदेव । ५ समुद्र । ६ पुल । ७ सांसारिक पदार्थोंमें दोषदृष्टि होनी यही श्लोक रूप कमलोंकी लम्बीनाली है । भीतरके–

डाटे कॉंटे मंद संग इंदुहेर निषपंद,
अरक विवेकके प्रकाशते विकाशहै॥
भोगी भूँड भोग मल भोगत न तजैपल,
संतनको मन अली सेवे सदा तासहै।
ऐसो नर आँखों सों विलोकों नाहिं जाहिं आखों,
भाखों निज मनहींको वाक्य भवनाशहै॥ १६॥

दोहा।

श्रुतिवक्ता भुक्ता अवनि, बहुर इतर बहुलोक।
तिनहिंविलोकनसकाहिंतिन, सुभगसरोज श्लोक॥ १७॥
तिनके अन अधिकारको, करके प्रगट बहोर।
श्रीहरिभर्तृ स्वचित्त प्रति, भनतसुवचननिचोर॥ १८॥

श्लोकः।

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः। अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम्॥ ४॥

—पत्तोंके स्थानापन्न श्लोकोंके पद हैं, बाहरके छोटे पत्रोंके स्थानापन्न श्लोकोंके अंक हैं। वर्णोंकी मात्रा स्निग्धतरी रूप है, श्लोकका अर्थ सुवासरूप है, अधिकारीको डाटना ताडना यही श्लोकरूप कमलोंमें कांटे हैं और कुसंगरूप चन्द्रको देखकर यह श्लोकरूप कमल खिलते भी नहीं, विवेकरूप सूर्य्यके सामने अर्थात् विवेकी पुरुषोंमें यह श्लोकरूप कमल प्रकाशते हैं इसी रीतिसे सारा रूपक बना लेना।

कवित्त ।

ग्रंथनके ज्ञाते माते मतसर कीच बीच,
धरानाथ मद साथ भरे दरशात हैं ।
दूषण चमोरें मोरे भूषण सुभाषणको,
पंडित भूपाल तो न सुने मेरी बात हैं ॥
पुना आन जंतु जेते दुखी मूढ दीन तेते,
मोते सकुचात हम ओते सकुचात हैं ।
पात्रविना भाखे राखे हवन को राखे तैसे,
जीरणमो गात मो सो बात होत जात हैं ॥ १९ ॥

सोरठा ।

वक्ताहै नृप आप, श्रोता निज मनको कियो ।
रुद्र[१] श्लोक अलाप, कियो अचल निहताप चित ॥ २० ॥

श्लोकः ।

भ्रान्तं देशमनेकदुर्गविषमं प्राप्तं न किञ्चि-
त्फलं त्यक्त्वा जातिकुलाभिमानमुचितं
सेवा कृता निष्फला ॥ भुक्तं मानविवर्जितं
परगृहे साशङ्कया काकवत्तृष्णे जृंभसि
पापकर्मनिरते नाद्यापि संतुष्यसि ॥ ८ ॥

कवित्त ।

दुरगम विषम अशेष देश भ्रम कर,
लह्यो मैं कलेश गह्यो लेश नाहिं धनको ।

१ भूभर । २ ग्यारह ।

जाति कुलकाभिमान उचित विहायताहिं,
सेवा कीनी फलहीनी शोचभयो मनको।
काकयों सशंक[1] मान विन परधामखायो,
अजे रजे न सप्रीत भजे दुरतन[2] को।
ब्रह्मते विछोर नीच तृष्णा कीनो ढोर अब,
होर जो नचात कहाँ होर करें जनको ॥ २१ ॥

श्लोकः।

खलोल्लापाः सोढाः कथमपि तदाराध-
नपरैर्निगृह्यान्तर्बाष्पं हसितमपि शून्येन
मनसा ॥ कृताश्चित्तस्तम्भः प्रतिहतधिया-
मञ्जलिरपि त्वमाशे मोघाशे किमपरमतो
नर्तयसि माम् ॥ ६ ॥

कवित्त।

आशे फलहीनी कीनी तेरे बलसों सेवादि,
मूढोंके कुबैन सोढे नैन छोडें वनको[4]।
चित्तको संकोच कीनो कंद्दगसों[3] रोकलीनो,
भावी शोक चीनो पीनो कीनो न वचनको॥
हस्योभी निकार दंत जैसे चिंतामान जंत,
जोर कर करें[6] करी बंदना नीचनको।

---

१ शंकाके सहित। २ पापियोंको या पापोंका। ३ सहारे। ४ जल।
५ नेत्रोंका जल। ६ हाथ।

तैसे नमो करों तुमें तेरे संग चिर भ्रमें,
अब चाहे छोर हमें काहे दाहे जनंको ॥ २२ ॥

श्लोकः ।

उत्खातं निधिशङ्कया क्षितितलं ध्माता गिरेर्धातवो निस्तीर्णः सरितांपतिर्नृपतयो यत्नेन संतोषिताः ॥ मन्त्राराधनतत्परेण मनसा नीताः श्मशाने निशाः प्राप्तः काणवराटकोऽपि न मया तृष्णेऽधुना मुञ्च माम् ॥ ७ ॥

तोटक छंद ।

अब तो तज तू हमको तृषने।तवलाभविषेममखेदघने ॥
तुम कीन मुझे मनवासजबै । धनशंकउठी उरमोरतबै ॥
सभकोवितहैसभ भूमतले । हमखोद थके परजंत जले ॥
गिरिधातुकृशानुप्रतापदही । अबलाभरसायनहोयसही ॥
हमसिंधुतरेमुकतादिसुने । मुकतादिकहाँशुकत्यादिलुने ॥
बहुभूपनकोयतनोकरके । अतिकीन प्रसन्नलजाहरके ॥
कराचित्तइकाग्रकुमंत्रजपे । शमशाननमें निशि पुंजखपे ॥
करहोंजबमैंवशिभूतनको । परकीहरदेहिंविभूतिनको ॥
इमआयुवृथाममहंतसभी । मुहिकाणवराटकभीनलभी ॥
कतकाजनिलाजअकाजदहो । तजमोहिंकहूँअबआनंगहो

१ दास । २ किसी दूसरेको ग्रहण करो ।

सोरठा।

कऱ्यो ब्रह्मते जीव, चाहे अब चाहे कहा।
किधों करे निरजीव, आशे तव आशय कवन॥२८॥

श्लोकः।

परिभ्रमसि किं वृथा क्वचन चित्त विश्रा-
म्यतां स्वयं भवति यद्यथा भवति तद्यथा
नान्यथा॥ अतीतमपि न स्मरन्नपि च
भावि सङ्कल्पयन् अतर्कितगमागमाननु-
भवस्व भोगानिह॥ ८॥

सवैया।

शांति निजांतर किंनगहे, कतडोलें वृथाभवमो सघना[1]।
होय यथा सुतथा निजहै, तुमते अन्यथा[2] बहुहोवतना॥
प्रीतिनसाथवितीतभली कछु, हाथमिली न यथास्वपना।
मौन[3] गहो अब मोन गहो तुम मोरागिरा जिन मोरमना॥
भाँविकि[4] भाव अभाव यथा, नरमोतिनमो नभकेसुमना।
मध्यकि भोग कि मध्य रमो, गतराग भ्रमो अनउत्तरना॥
ब्रह्म नपुंसक यौं मन तू, विनतां तव दंपति[5]मोसुखना।
टेरत मैं प्रतिफेर तुमै तुम, मोमतकोमत फेरमना॥३०॥

---

१ बहुत ही। २ जो भावी है सो तेरेसे टलनेको नहीं है। ३ विश्रांति-ग्रहण करो। ४ भावीहोनेवाले पदार्थ न हुए जैसे हैं उनके साथ प्रेम करना मानों आकाशके फूलोंकी गन्धि लेनेकी इच्छा करनी है। ५ विनाब्रह्मके तेरेमें या तेरी स्त्री तृष्णामें सुख नहीं है। दम्पति नाम स्त्रीपुरुषका है।

श्लोकः ।

परेषां चेतांसि प्रतिदिवसमाराध्य बहुधा प्रसादे किं नेतुं विशसि हृदय क्लेशकलितम् । प्रसन्ने त्वय्यन्तः स्वयमुदितचिन्तामणिगुणे विविक्तः सङ्कल्पः किमभिलषितं पुष्यति न ते ॥ ९ ॥

कवित्त ।

चित्त रे तूं वित्तके[१] निमित्त दिन रात नित्य,
सेवत परोंके चित्त एही दुःख अति रे ।
तिनोंकि जो मुदता सो उदतें[२] कलेशोंकर,
मत मान करे हत ताको तांको[३] मत रे ।
निज चिंता तज सोवे स्वांतर प्रसन्न होवे,
चिंतामणि गुणं[४] जोवे देहमें महत्तरे ।
ताते अभिलषित न तेरो किधों सिद्धहोय,
सुधा[५]पान करेते न किधों व्याधि हत रे ॥ ३१ ॥

दोहा ।

तनुमो तनक निवास तब, चिंतामणि तज ताहि ।
बहिरकृपणगृह पराभव[६], सहितद्रविणि[७] हित काहि ॥ ३२

---

१ धनके लिये । २ उत्पन्न होती हैं । ३ उनकी तरफ देख मत । ४ सन्तोषरूपगुण । ५ अमृत । ६ निरादर । ७ धन ।

श्लोकः ।

एतस्माद्विरमेन्द्रियार्थगहनादायासकादा-
श्रयात् श्रेयोमार्गमशेषदुःखशमनव्यापा-
रदक्षं क्षणात् ॥ शान्तं भावमुपैहि संत्यज
निजां कल्लोललोलां गतिं माभूयो भज
भङ्गुरां भवरतिं चेतः प्रसीदाधुना ॥ १० ॥

कवित्त ।

इंद्रियोंके भोग सारे भारे रोग देन वारे,
ताको कीजे हेय[1] मत श्रेयपथ तज रे ।
पापअंद्रि[2] नाशनको वज्र पाक[3]शासनिको,
दाहेदोष घासनको मोक्षशिखी[4] सज रे ॥
हूजो शांत भावबीच प्रापत कदापि नीच,
आपनी कलोल लोल[5] गतिते नलज रे ।
क्षणभंग भवरोग ताको मन करो त्याग,
मोक्षको वैराग्य सहकारी तास भज रे ॥ ३३ ॥

श्लोकः ।

मोहं मार्जयतामुपार्जय रतिं चन्द्रार्धचू-
डामणौ चेतः स्वर्गतरङ्गिणीतटभुवामास-
ङ्गमङ्गीकुरु ॥ को वा वीचिषु बुद्बुदेषु च

---

१ इन्द्रियोंके भोगोंमें (हेय) त्याग बुद्धिकर और श्रेय पन्थको मतछोड।
२ पाप रूपपहाडोंके नाशार्थ । ३ इन्द्र । ४ अग्नि । ५ चंचल ।

तडिल्लेखासु च स्त्रीषु च ज्वालाग्रेषु च पन्नगेषु च सरिद्वेगेषु च प्रत्ययः ॥ ११ ॥

कवित्त ।

परवारके सनेह को निवार देहि मन,
बीची बुदबुदे रेखा दामेंनी समानिये ।
पुना दीपतागनिमैं नागनमैं नदीवेग,
माहि जैसे सुख नाहिं तैसे ताहि जानिये ॥
देवनँदी तीरकी पवित्र धरा पर पैठ,
नीलँकंठमाँहि नीत उतकंठा ठानिये ।
अब ऐसी रीति करो भोगनकी प्रीति हरो,
गुरुवेद वाक्य धरो तीनताप हानिये ॥ ३४ ॥

श्लोकः ।

आक्रान्तं मरणेन जन्म जरया यात्युज्ज्वलं यौवनं सन्तोषो धनलिप्सया शमसुखं प्रौढाङ्गनाविभ्रमैः ॥ लोकैर्मत्सरिभिर्गुणा वनभुवो व्यालैर्नृपा दुर्जनैरस्थैर्येण विभूतिरप्यपहता ग्रस्तं न किं केन वा॥ १२॥

चौपाई ।

जन्ममहावरग्रस्योमरणकर।अधकोजपज्योमृगकोनाहँर॥
पुनि निर्मल अतियुवानुकूला । जरा करातांकोनिमूंला ॥

१ बिजली । २ गंगाजी । ३ महादेव । सिंह ।

दुरि हरत ज्यों तुरतगङ्गाजल।कलहगौनज्योंकरेमौनबल[1]॥
पुनि धनचाहि ग्रस्यो संतोषा।यज्ञविपाक ग्रसे ज्यों रोषा॥
तरल[2]तरुणतरुणीकेलोचन । ताहिविभ्रमाहिसमसुखमोचन ॥
ज्यों निरवेद खेद भवहारे । पुना सतोज्योंरजतमटारे ॥
ग्रसेगुणीकेगुणकोखलइँउँ । ब्रह्मविचारविकारग्रसेजिउँ ॥
ग्रास्योइँउँक्षितिकोउरगादिक।लाजत्रासकोज्योंकामादिक।
ग्रसत दुर्जनोंकर नृप ऐसे । गिले प्रश्नको उत्तर जैसे ॥
सकलविभूतिअनस्थिरताने । ग्रसीमनीषा[3]ज्योंचिंताने ॥
इसप्रकार जनकेके नाँहीं । ग्रस्त कालकरयाँभव माँहीं ॥
अज पिपीलिका लगजगजेतो । ग्रस्तसमस्तकालकरतेतो ॥

दोहा ।

सकल भोग भवहेतु मन[4], चपलसदोषसशोक ।
ता तज भोगी जनोयुत, गुरु श्रुतिपंथ विलोक ४१

श्लोकः ।

अग्रे गीतं सरसकवयः पार्श्वतो दाक्षिणात्याः पृष्ठे लीलावलयरणितं चामरग्राहिणीनाम् ॥ यद्यस्त्येवं कुरु भवरसास्वा-

---

१ मौनके बलसे जैसे लडाई मिटजाती है । २ चंचल । ३ विचारशालिनी बुद्धि । ४ हे चित्त ! संसारके सभी भोग अति चंचल शोकके देनेवाले तथा अनेकप्रकारके दूषणोंयुक्त होनेसे संसारहीके हेतु हैं इस लिये उनके भोगीजनोंके सहित त्यागकर ।

दने लंपटत्वं नो चेच्चेतः प्रविश सहसा निर्विकल्पे समाधौ ॥ १३ ॥

नाराच छंद ।

विचित्र राग रंगजे स्वअग्रभागमें बने ।
कविंद आस पासमें रसाल वाक्य जे भनें ॥
प्रवीन चारु कामिनी जि पृष्ठ भागमें लसें ।
अलंकृती मनोहरी मुखारविंदते हँसे ॥ ४२ ॥
करे ग्रहीत चामरं विलाससों भ्रमावती ।
तिने करे करे हलें करे ध्वनी स्वभावती ॥
अरोग देह आयुषा महा अशत्रु राज है ।
जबे समीप आपने लखें इतो समाज है ॥ ४३ ॥
प्रपंच भोग स्वादमें निशंक तो अबी रमो ।
भवे तथा न तौ कहाँ पृथा इते उतै भ्रमो ॥
असंग विश्व ते भवो अरण्य वास लीजिये ।
असंप्रज्ञातमें मना प्रवेश शीघ्र कीजिये ॥ ४४ ॥

श्लोकः ।

पुण्यैर्मूलफलैः प्रिये प्रणयिनि प्रीतिं कुरुष्वाधुना भूशय्यांनववल्कलैरकरणैरुत्तिष्ठ यामो वनम् ॥ क्षुद्राणामविवेकमूढमनसां यत्रेश्वराणां सदा चित्तव्याध्यविवेकविह्वलगिरां नामापि न श्रूयते ॥ १४ ॥

कवित्त।

भूमि सेज मूल फल मेधं नव वल्कल,[1]
करणे नपरे देव आगे रच धरे हैं।
करो इने साथ रति प्यारी प्रेम वारी मति,
उठो उठो तामें अब जामें बिंब ठरे हैं॥[2]
तुच्छ अविवेकी शठ मूढ मन बोल कटु,
जाके चित्तचिंता आगकर सदा जरे हैं।
ऐसे धनवाननके नाममात्र काननमें,
जाति माहिं काननमें कबूं नाहिं परे हैं॥ ४५॥

दोहा।

शब्द खलोंके नामके, परें न करण मझार।
ऐसे निर्जन वन त्रिषें, बसो बुद्धिवर वार॥ ४६॥

श्लोकः।

पातालमाविशसि यासि नभो विलंघ्य
दिङ्मण्डलं भ्रमसि मानस चापलेन॥
भ्रान्त्यापि जातु विमलं कथमात्मनीतं
तद्ब्रह्म न स्मरसि निर्वृतिमेषि येन॥१९॥

सवैया।

शठ जाहिं पतालकु शून्यकु लाँघाकि शूनो फिरें दिगमंडल धावत। विन भाग्य मिले न धनादि सुखं तव

१ पवित्र नवीन वृक्षोंकी छालके वस्त्र। २ शीत, उष्ण, हर्ष, शोक, राग द्वेष इत्यादि द्वन्द्व ठरे अर्थात् जहां नहीं है।

चंचलता दुख हेतु जनावत । तत ब्रह्म निजातमशुद्ध मना भ्रमसोपि कबी सुखहेतु न ध्यावत । तव द्वंद्वज वै भवसिंधु तबे तव शांत भये विन शांत न आवत॥४७॥

चौपाई ।

मूढ करे पाताल प्रवेशा । देख्यो चाहे देशफणेशा ॥
विष्णुसहस्रनाम नवतनको । भाषेशेषपिखोंतांतनको ॥
फणसहस्रपरमणिअवतंसा । भासहितमध्वंसकसमहंसा ॥
ल्यावोंकिवेंएकमणिहरके । नाशैं सबकलेश तवघरके ॥
तहँतेमूढशून्यमुडआवहिं।पुनाकाशको लाँघसिधावहिं ॥
सुरपतिलोकविलोकनकारण।सुधातडागकल्पतरुवारण॥
सुरभीनंदनवनउपवनको । दरशोंसुरनसहितवाहनिको ॥
बैशपाकशासनासिंहासन ।करेकवनाविधिविबुधहिंशासन॥
किवेंपरेममतहँपरचोजब । निजगृहपठवोंदिव्यभोगतब ॥
इतरीतोउतरीतोआवहिं । पुनिदिगमंडलकोउठधावहिं ॥
दुर्गमविषमअदर्शीठौरांहि । द्रव्यनिमित्तनिरंतरदौरांहिं ॥
चित्तचपलताकरअहनिशिमैं ।भटकहिंव्यर्थकहाँदशदिशिमैं ॥
ततनिर्मलब्रह्मातम रूपा । साक्षीशुद्धअसंग अनूपा ॥
भ्रमकरभीकबहूँकहुँरीते । नहिंसिमरासिनिजब्रह्मअभीते॥
व्यष्टिसमष्टिउपाधिभेदकर । जीवेश्वरकीद्विधाभिधापर ॥
मायाऽविद्यामलमिलभासै । मुग्धोंके उरमांहिंप्रकाशै ॥
तदपिसुविमललखेतिहांनिर्दुख । जाँहिपिखेनशजाहिंनि-
खिलदुख ॥ जासलाभकरलाभअपरना । जासुखकरसु-

खअवरनवरना ॥ एकवारहै दर्शन जाको । देखनयोग्य रहेपुनिनाको ॥ जासरूपहैकरभवमांहीं । इतररूपपुनि होवतनाहीं॥ जोसबैंकसमानसमाना । तौमैं भी सो रम्यो न आना ॥ त्वंनसर्वते अन्यतजाते । वहीरूपतबनिश्चय ताते ॥ ५८ ॥ ब्रह्म सर्वमो पूरण जैसे । सर्वविषे तुम पूरण तैसे ॥ जाते श्रुति तव ब्रह्म बखाना । ताते तव वपुयां-भवनाना ॥भूतनकोहैपूंतअमूतन । जडपरिणामिनाश-समृदजन ॥ चेतनइकरस अव्ययआतम । ताबिनजड-संघातअनातम॥सतो अंश भूतनकी जोहै। ताते अंतः-करण भयो है ॥ रागद्वेषको घोषसुजाते । सोपिरावरो रूपनताते ॥ ६१ ॥ कारजद्वारा जिहँ अनुमाना । नात-रसोप्रत्यक्ष अभाना ॥ बिंबोपाधिकोकारणजोहै । कारण देहनआतमसोहै ॥ ६२ ॥ तीनोपाधि विहीनो जोऊ । रूपतुम्हारो निश्चय सोऊ॥ नहिंततब्रह्मरूप निजध्यावें। जाकरमूढमुक्ति तू पावें ॥ ६३ ॥

दोहा।

रे मन तज निज बहिर्गति, अंतर्वर सुखहेत ।
अंतर्मुख विन सुखनहीं, विदित सनातननेत ॥६४॥

---

१ यह शरीर पंच भूतोंका पूत अर्थात् पुतला है। २ घर । ३ तुम्हारा। ४ स्थूल तथा लिंगशरीर रूप उपाधिद्वय । ५ सुषुप्तिअवस्था । ६ कारण लिंग और स्थूल।

श्लोकः ।

चेतश्चिन्तय मा रमां सकृदिमामस्थायि-
नीमास्थया भूपालभ्रुकुटीकुटीरविहरव्या-
पारपण्याङ्गनाम्॥कन्थाकञ्चुकिनः प्रवेश्य
भवनद्वाराणि वाराणसीरथ्यापंक्तिषु पाणि-
पात्रपतितां भिक्षामपेक्षामहे ॥ १८ ॥

कवित्त ।

चंचंलाको मत चिंत चंचल करति चित्त,
चंचलाको चीन चित्त चंचलाके वतहै ।
भूपनकी भ्रुकुटी कुटीमें वारवधूवत,
गतागतके व्यापार बिच विचरतिहै ॥
काशीजूकी वीथिनके जूथनेमें धाम ग्राम,
ताके द्वारे अटों ओढ़ कंथा एमो मतिहै ।
ताते पाणिपात्रपरे भिक्षा तासों प्राणधरे,
कमला कीरति लोक कमला करतिहै ॥ ६५ ॥

दोहा ।

श्रीहरके श्रीहर पुरी, बाराणसिको वास ।
जीवत भुगत मुकतमरे, करे चहो चित तास ॥६६॥

---

१ हे पुरुष ! चंचल जो लक्ष्मी है उसका तू चिन्तन मतकर वह वृथा तेरे चित्तको चंचल करेगी परन्तु तेरेको मिलेगी नहीं और चित्तका यह स्वभाव है कि यह लक्ष्मीको देखकर तत्स्वरूप होजाता है । परन्तु वह राजालोगोंकी भौंहांरूपी कुटियामें वारवधू वेश्याकी तरह इधर उधर भ्रमण करती है अर्थात् तेरेको मिलना उसका बहुतही कठिन है ।

श्लोकः ।

उद्यानेषु विचित्रभोजनविधिस्तीव्रातितीव्रं तपः कौपीनावरणं सुवस्त्रममितं भिक्षाटनं मण्डनम् ॥ आसन्नं मरणं च मङ्गलसमं यस्यां समुत्पद्यते तां काशीं परिहृत्य हन्त विबुधैरन्यत्र किं स्थीयते ॥ १७ ॥

कवित्त ।

उपवनों मध्य सिद्ध भोजन विविधविध,
तप वृद्धहूँते वृद्ध जा समै प्रधानहै ।
पटलकौपीनहीको अप्रमानपटनीको,
भीखहीको रमणीको रटनो प्रमाणहै ॥
चारखाणी प्राणी जामें मरके न फेर जामैं,
आवै ढिग मृत्यु तामें मंगल समान हैं ।
छोरे ऐसी काशी कैसे सुधी और ठौर बसे,
कैसे भयेदेव यम हासीको सथानहै ॥ ६७ ॥

दोहा ।

अज्ञ त्यजहिं वाराणशी, तऊ न खेद कछु मोहि ।
त्यजहिं सुजन लखमुक्तिप्रद, दुसहदुःखममओहि६८॥
रे मन तू तो त्याग जिन, मुक्तद्वार हरद्वार ।
सिमर सरित समरारितिहं, जगजीवनदिनचार ६९॥

श्लोकः ।

नायं ते समयो रहस्यमधुना निद्राति
नाथो यदि स्थित्वा द्रक्ष्यसि कुप्यति प्रभु-
रिति द्वारेषु येषां वचः ॥ चेतस्तानपहाय
याहि भवनं देवस्य विश्वेशितुर्निर्दौवारिक-
निर्दयोक्त्यपरुषं निःसीमशर्मप्रदम् ॥ १८॥

कवित्त ।

भूपनकी चाहिकरे काहेचित जाहि घरे;
गये छरीदार हरें सतकार जोत हैं ।
ना रे इहकाल महीपाल गुरुमतेमांहिं,
अजे समो नाहिं नरनाथ सुखी सोत हैं ।
सुने बैन तेरे जब क्रोध नैनहेरे प्रभु,
जाके पौरे ऐसे कौरे वाकको उदोत हैं ।
छोरताके पौरदौर मोक्षठौर काशीमांहिं,
ध्वना न कठोर जहां दौरपं अगोत हैं ॥ ७० ॥

---

१ अरे नीच भिखारी ! यह काल तेरा नहीं है क्योंकि राजा इस कालमें (गुरुमते) किसी विचार विशेषमें हैं । दुबारा गये तो अभी समोंनाहि क्योंकि नरनाथ सुखपूर्वक आरामसे सोरहे हैं ॥ तेरे भीख मांगनेके वचन जब सुनेंगे तो तेरेको वह क्रोधदृष्टिसे देखेंगे । इत्यादि अनेक तरहके कटुवाक्य जिनके द्वारोंपर सुनेजाते हैं । २ जहांके दौरप अर्थात् द्वारपाल गण अगोत अर्थात् जाति गोत्रके पक्षपाति नहीं हैं अथवा दौरप शब्दसे दौरे हुयेके पालक महादेव पक्षपाती नहीं हैं ।

दोहा ।

अप्रमाण आनन्दप्रद, पुनः जन्म जिहँ हान ।
बसो मना आनन्दवन, तज नृप कृपणस्थान ॥७१॥
अलं भरतवैराग्यको, प्रथमोऽध्याय अनूप ।
स्वमन शिष्यको शिक्षमत, दईस्वामिसमभूप ॥७२॥

दोहा ।

द्वितिये पश्चात्तापके, भाषे दशक श्लोक ।
जाके श्रवण मनन करे, नष्ट होहि मन शोक ॥ १ ॥

श्लोकः ।

न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसारवि-
च्छित्तये स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽपि
नोपार्जितः ॥ नारीपीनपयोधरोरुयुगलं
स्वप्नेऽपि नालिंगितं मातुः केवलमेव यौवन-
वनच्छेदे कुठारा वयम् ॥ १९ ॥

कवित्त ।

पादकंज शिवजीके न अराधे हम नीके,
कारण उधारजीके रमणीकै चीनमैं ।
नाकपौर ताकनके धाकनमै पुण्य दक्ष,
तेपि न एकत्र कछु कीन भागहीन मैं ॥

---

१ स्वर्ग ।

उभैपीन कुची नारी भारी रूपगुणवारी,
स्वप्ने मझारीभी आलिङ्गन न कीन मैं ।
माताको यौवन वन तास नाश हेतु जन,
केवल कुठार[1] होय खोये सुख तीन मैं ॥ २ ॥

श्लोकः ।

विद्या नाधिगता कलङ्करहिता वित्तं च नोपार्जितं शुश्रूषापि समाहितेन मनसा पित्रोर्न संपादिता ॥ आलोलायतलोचना युवतयः स्वप्नेपि नालिङ्गिताः कालोऽयं परपिण्डलोलुपतया काकैरिव प्रेरितः॥२०॥

नाराच छन्द ।

अदोष वेद बोधको अधेन मैं न कीन है ।
न सेव मात तातकी मँझार चित्त दीन है ॥
दया न दीनजन्तुपै करी मनाक[2] मैं कबी ।
न न्यायवंत द्रव्य भी इकत्र कीन लोअबी[3] ॥ ३ ॥
विशाल नील कञ्जनैन चञ्चले हृदेप्रिया ।
नं कीन सोपनेपि[4] मैं अलिङ्गनं महात्रिया ॥
प्रपिण्डपै[5] सलोभ काक योंसमो गतोहमें ।
विकाश मात आस्य कञ्ज नाशको करी जमें ॥ ४ ॥

---

१ कुल्हाडी । २ थोडीसी । ३ अभीतक । ४ स्वप्नमें । ५ केवल पराये पिण्डोंपर लुब्ध होनेवाले काकोंकी तरह हमारा व्यर्थ समय गया है । इसलिये—

श्लोकः।

धिक् तज्जीवितमापदां हि निलयं पित्राप्त-
बन्धूज्झितं दीनानाथजनोपकारकरणव्या-
पारदूरीकृतम् ॥ मन्दीभूतशशाङ्कशेखर-
पदद्वंद्वारविन्दस्मृतिं व्यालोलायतलोच-
नास्तनतटप्रश्लेषविश्लेषितम् ॥ २१ ॥

कवित्त।

ता जीवनको धिक्कार जोऊ दुःखको अगार,
पितृ बंधु परिवार कर नित जित्त है ॥
दीनानाथ जनोंपर उपकारको व्यापार,
ताको त्रिसकार जाँमझारनित्य थित्त है ॥
जाके भाल बिषे इंदु द्वंद्वतापदारविन्द,
ताको ध्यान जांमोमंदभूतनिन्दानित्त है[1]।
अलंलोललोचन[2] विशालकुचतटत्रिया,
ताको मैं लाभी न भयो योंही वेलावित्त है ॥ ९ ॥

श्लोकः।

नाभ्यस्ता भुवि वादिवृन्ददमनी विद्या
विनीतोचिता खड्गाग्रैः करिकुंभपीठदलने-

—हम अपनी विकाशमाता अर्थात् कीर्तिमाताके मुखकमलके विनाशकेलिये (करी) हस्ती रूप पैदा हुए हैं।

१ जिस जीवनमें ऐसे शंकरका ध्यान मन्द अर्थात् नहीं है और भूत प्राणियोंकी निन्दा जिसमें नित्य होती है। २ भूषित तथा चंचल हैं नेत्र जिसके।

र्नीकं न नीतं यशः ॥ कान्ताकोमलपल्लवाधररसः पीतो न चन्द्रोदये तारुण्यं गतमेव निष्फलमहो शून्यालये दीपवत् ॥२२॥

कवित्त ।

वादीवृन्दके दमन वारी प्यारी सन्तनको,
ऐसी विद्याकोशलोक पठचों मैं न लोकमैं ।
खड्गोंके अग्रकर करीकुम्भ पीठनको,
पीठके न यश नीठ कीनो सुरलोकमैं ॥
कांताके अधर मृदु दलवत रसनिधि,
सो न चूसे उदेविधु[1] स्वेच्छित[2] अशोकमैं ।
ज्ञान नाक नारी तीनों कोन रसलीनो अहो,
वृथा युवाक्षीनो जैसे दीप शून्य ओक[3]मैं ॥ ६ ॥

श्लोकः ।

अजानन् माहात्म्यं पतति शलभस्तीव्रदहने स मीनोप्यज्ञानाद्बडिशयुतमश्नाति पिशितम् ॥ विजानन्तोप्येते वयमिह विपज्जालजटिलान्न मुञ्चामः कामानहह गहनो मोहमहिमा ॥ २३ ॥

कवित्त ।

दीपमें पतंग परे जरेन प्रतापजाने,
मीनस अज्ञाने भखे कुंडीमिले मांसको ।

१ स्थित । २ अपनी इच्छाके अनुसार शोकसे रहित होकर । ३ घर ।

गजगजी हेत परचो खात खात अंकुशको,
रंगमें कुरंग राग करे निज नाशको ॥
पङ्कजकी गन्ध बीच नीचभृङ्ग मीच गहे,
इति आदि अज्ञ नाश करें निज श्वासको ।
अहोहा सघन महामोहको प्रताप लहा,
शुभाशुभ जानो पै नहानो भोग आशको ॥ ७ ॥

दोहा ।

मोह[2]महातम रूपको, गहन महामत आहि ॥
मोहे पुरुष महातमा, जिहँ विवेक रवि नाहिं ॥ ८ ॥

श्लोकः ।

ज्ञानं सतां मानमदादिनाशनं केषांचिदेतन्मदमानकारणम् ॥ स्थानं विविक्तं यमिनां विमुक्तये कामातुराणामतिकामकारणम् ॥ २४ ॥

सवैया ।

एश्रुति ज्ञान सुजानन्के, अभिमान मदादि विकार निवारे । केचित मोसम नीचनके, चितमो बहु मान मदादिक धारे ॥ शून्य यथा मठ साधुनको, अति

---

१ रागमें (कुरंग) हरिणका राग कहिये प्रेम है। २ महा अज्ञानरूप मोहको धारण करना हमारी मूर्खता है, इस मोहरूप अन्धकारने अनेक महात्माओंको जिनके पास विवेकरूप सूर्यका उजाला नहीं है अन्धकूपमें डाला है।

मोक्षको साधन दोष प्रहारे॥ सोहमसे मदनातुरको अति कामको कारण वामं[१] समारे॥ ९॥

श्लोकः।

अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वापि विषयान् वियोगे को भेदस्त्यजति न जनोयस्त्वयममून् ॥ व्रजन्तः स्वातंत्र्यादतुलपरितापाय मनसः स्वयं त्यक्ता ह्येते शमसुखमनन्तं विदधति ॥ २८ ॥

कवित्त।

पुण्यनके वश्यते सुभोग चिर वसते,
नि[२]मित्तिनशे नशते मर्याद आदि दिनमैं।
कौन भेद भोगन के भेदमैं नतजे जन,
एकको[३] वियोगतो अवश्य होत तिनमैं॥
स्वते जब जावैं तब मनको तपावैं भारी,
मोक्षे तिने आपतांप[४] मोक्षे तिनैं क्षणमैं।
ऐसे मोक्ष[५] प्रतिबंधी विषे लखेमैं संबन्धी,
को कुभागी विनमैं जो रागी होत इनमैं॥ १०॥

१ सुन्दर स्त्री। २ पुण्योंके नाश होनेसे भोग नाश होते हैं। ३ या भोक्ता मर जायगा या भोग स्वयं नष्ट होजायँगे। ४ जिसको विषय छोडे जाते हैं वह पुरुष जलता रहता है और जो पुरुष विषयोंको स्वयं छोड देता है उसके तीनों ताप दूर होजाते हैं। ५ ऐसे मोक्षके विरोधी विषयोंको मैंने अपने सम्बन्धी समझा।

श्लोकः।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः ॥ कालो न यातो वयमेव यातास्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥२६॥

मात्रक सवैया।

अहो सखे मैं भोग न भोगे भोग्योगयो आप मैं मूढ ॥
क्रमक्रम हमरो प्राक्रमसगरो लीनो भोगोंभोग अगूढ ॥
भुक्ता जान भोगमैं भोगे उलटा भोगों भोग्यो मोहिं ॥
शिश्नोदरपर भयो नचीनो कीनो मैं निजापसोंद्रोह ॥
इंद्रिय गणके संयम तपको ताप्यो मोहिं न कबहूँठीक ॥
काम क्रोध लोभादिअग्निकर मैं संतप्त भयो अबतीक ॥
कालचक्रवतभ्रमत सर्वदा शीतउष्णवपु धर विख्यात ॥
समा न बीत्योहौं हौंबीत्यो भयो विलक्षण ममसंघात ॥
तृष्णा जीरण भई न अबलौं मैंहूं भयो जरजरो आप ॥
वृद्धभयो दुर्बुद्धि गई नहिं मे उरमें यहि गुरु संताप ॥
अधमकाममोअवधिगई सबलब्धभयोअबलौंकछुनाहिं ॥
हहानकरके पां पकरे हर पापकरे मैं अह निशिमाहिं ॥

श्लोकः।

आघ्राय पुस्तकं धन्याः सर्वं विद्म इति

१ मेरे शरीरके अवयवोंका समूह वलीपलितादि अनेक विकारोंवाला होनेसे आगेसे बहुत विपरीत होगया है।

स्थिताः ॥ शतवारं पठित्वापि हा न विद्मो जडा वयम् ॥ २७ ॥

सवैया ।

फूलनिबंध सुगंध रहस्य कुधारतजेसब स्वातम चीनो ॥
ते धन याविधिराजतजेभवबंधनवृन्दकियोजिहँक्षीनो ॥
मैं शठते शतवार पठेनहिंस्वातमचीनुभयोमदपीनो ॥
हानरकेतनुमोवशकेनरकेवसबेकु पराक्रमकीनो ॥ १४ ॥

श्लोकः ।

ब्रह्मज्ञानविवेकिनोऽमलधियः कुर्वन्त्यहो दुष्करं यन्मुञ्चन्त्यपि भोगभांज्यपि धनान्येकान्ततो निःस्पृहाः ॥ संप्राप्तानि पुरा न संप्रति न च प्राप्तौ दृढप्रत्ययो वाञ्छामात्रपरिग्रहाण्यपि परं त्यक्तुं न शक्ता वयम् ॥ २८ ॥

कवित्त ।

ब्रह्मज्ञानके विवेकी विमल मनीषा जाकी,
अहो दुहक्रिया ताकी पायो द्रव्य त्यागेहैं ।
भोगनकी राशिको अवास धनते उदास,
जाते भोगोंते निराश आतमानुरागेहैं ॥

---

१ मनुष्यशरीर धारकर मैंने नरकमें वसनेका प्रयत्न किया है । २ विचारवाली बुद्धि । ३ घर ।

आंदिमें न प्रापत अप्रापत इदानीवित्त;
दृढ न प्रतीति हम आगे कछु पागेहैं ।
इच्छामात्र धनोंके एकत्रको न त्याग सकें,
वही बडभागे हैं हमारे भागे भागेहैं ॥ १८ ॥

श्लोकः ।

भिक्षाशनं तदपि नीरसमेकवारं शय्या च भूः परिजनो निजदेहमात्रम् ॥ वस्त्रं च जीर्णशतखण्डमयी च कंथा हाहा तथापि विषया न परित्यजंति ॥ २९ ॥

अनंगशेखर छंद ।

जाचजाचके अहार नाहिं सोपि स्वाद बार,
लाभहोत एकबार भूखतापको अवार ।
शैन भूमिपै बनो न साक सैनको गनो,
शरीर मात्र पोखनो न जोबनो सुपैदवार ॥

---

१ और हम कैसे हैं कि, इससे प्रथम गतआयुमें हमको कभी कहीं कुछ नहीं मिला और अबभी हमारे पास कुछ नहीं है और आगेको कहींसे कुछ मिलनेकी भी उम्मेद नहीं है किन्तु हमारे मनमें धन एकत्र करनेकी इच्छामात्र है परन्तु उस इच्छाका हम त्याग नहीं कर सकते इसलिये वे विरक्त महात्माही बडे भागोंवाले हैं जिन्होंने प्राप्त धनको छोडकर आत्मज्ञान संपादन किया है और हमारे भाग्य तो हमारेसे भागे हुए अर्थात् नष्टप्रायही प्रतीत होते हैं ।

क्षीण चीरगोदरी अनेकलीर सोंकरी,
करी उजार झोंपरी अधेन ग्रंथ वार वार।
हाय हाय भोग चाहि नाहिं मैं तजे अजेपि,
मोर चित्त बैलको सवार बेलकेऽसंवार ॥ १६ ॥

दोहा ।

अलं भरत वैराग्यको, भयो दूसरोऽध्याय।
निंद्यो भूपति स्वापको, कल्यानारिसुहाय ॥ १७ ॥

दोहा ।

अब तृतीय अध्यायमें, आठ श्लोक उच्चार।
वरणे महिमा कालकी, सुनो जनो उरधार ॥ १ ॥

श्लोकः ।

अमीषां प्राणानां तुलितबिसिनीपत्रपयसां कृते किं नास्माभिर्विगलितविवेकैर्व्यवसितम् ॥ यदाढ्यानामग्रे द्रविणमदनिःसंज्ञमनसां कृतं वीतव्रीडैर्निजगुणकथापातकमपि ॥ ३० ॥

---

१ हे बैलकी सवारी करनेहारे शंकर ! आप कृपाकर मेरे चित्तरूपी बैलको सुधारिये। २ राजाने इसमें अपने कल्याणके विरोधी स्वभावकी निन्दा करी है।

कवित्त।

इने प्राणंत्राण काज केके मैंन कीने काज,
कंजदलपै विराज कंकणी ज्यों हततै है।
धनमद कर जांके अंधमन आगे ताँके,
बके गुणबाँके निज तजी लाज मतिहै॥
हौंतो गुणखानि तुम शक्रके समान,
कुरुक्षेत्र ग्रसे भान मोमें दान तदवतैहै।
कीनी मैं इत्यादि कृति शासन निमित्त पर,
सासनाभी सही पर सास ना रहतैहै॥ २॥

श्लोकः।

[illegible]यं येभ्यो जाताश्चिरपरिगता एव खलु ते समं यैः संवृद्धाः स्मृतिविषयतां तेऽपि गमिताः॥ इदानीमेते स्मः प्रतिदिवसमासन्नपतनाद्गतास्तुल्यावस्थां सिकतिलनदीतीरतरुभिः॥ ३१॥

---

१ इन कमलपत्रगत जलबिन्दुकी तरह शीघ्र विनाशी प्राणोंकी रक्षाके लिये मैंने कौन २ अकार्य्य नहीं किये हैं मैंने अपनी लाजको त्यागकर धनमदान्ध पुरुषोंके आगे उनकी तथा अपनी अनेक प्रकारकी प्रशंसा करी, मैंने यहांतककी कहा कि हे देव! मैं तो गुणोंकी खानि हौं और आप इन्द्र जैसे ऐश्वर्यवाले महाराज हैं इसलिये मेरे जैसे पात्रको दान दियेका आपको कुरुक्षेत्रके सूर्यग्रहण जैसा फल है इन प्राणोंके लिये मैंने इत्यादि अनेक कार्य किये शासनाभी सहारी परन्तु शोक है फिरभी मेरे प्राण नहीं रहते हैं।

कवित्त ।

जाहि मात पिताते मैं भयो उतपत ते तो,
कालवश नये चिरकाल बीत गयो है ।
समवैस वारे द्वारे सिमृति सिधारे सारे,
रहे हम शेष देह वृद्ध वेष लयो है ॥
नदीरेत तीर पर तरुयों शरीर भयो,
प्रति दिन मृत्यु तीर तीर सब अयोंहै ।
गिले काल व्याल सम मेंडकके अजेहम,
भजें भोग मच्छरोंको मोसों[१] मूढ जयोंहै ॥ ३ ॥

श्लोकः ।

तपस्यन्तः सन्तः किमधिनिवसामः सुर-
नदीं गुणोदारान् दारानुत परिचरामः
सविनयम् ॥ पिबामः शास्त्रौघान् द्रुतवि-
विधकाव्यामृतरसान् न विद्मः किं कुर्मः
कतिपयनिमेषायुषि जने ॥ ३२ ॥

त्रिभंगी छंद ।

है कछुक निमेषा हमरी वैसालखों न कैसा कामधरों ।
सुरसरिके तट पर कुटि आठठ करताँ मैं तपकर ताप हरों॥
गुण जाहिं उदारे असगण दारें मम रुचि धारें तिहँ विचरों ।
गण ग्रंथनमो उत काव्यनमो युत कथा रसामृत पानकरों ॥

---

१ मेरे जैसा और दूसरा मूर्ख कौन है ?

दोहा।

तप त्रिय सुधा असिद्ध त्रय, निमिष आयुषा माँहिं।
दुःखरूप भवते अबे, विनि निराश सुख नाँहि ॥ ८ ॥

श्लोकः।

यत्रानेकः क्वचिदपि गृहे तत्र तिष्ठत्यथैको
यत्राप्येकस्तदनु बहवस्तत्र चान्ते न
चैकः ॥ इत्थं चेमौ रजनिदिवसौ दोल-
यन् द्वाविवाक्षौ कालः काल्या सह बहु-
कलः क्रीडति प्राणिशारैः ॥ ३३ ॥

कवित्त।

काल भगवान वृंदकलावान कलीसंग,
खेलत चौसार चार दिगहूंकी धरके।
चार खाणी प्राणी गीटा रैनदिन पासे जोटा,
मारत अचूक चोटा दंपती अडरके ॥
जहाँ एक गेहमों अनेक तहाँ एक रहे,
एकते अनेक है क्षणेक एकूँसरके।
कालकाली खाली कीने लोक लोकपालीसने,
चौपट नहाली अजे शेषलोक करके ॥ ६ ॥

श्लोकः।

आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते
जीवितं व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालो

न विज्ञायते ॥ दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते पीत्वा मोहमयीं प्रमाद- मदिरामुन्मत्तभूतं जगत् ॥ ३४ ॥

कवित्त ।

भानहुँकी गतागत कर दिन दिन प्रति,
प्राण मोरे घटें जैसे खोरे घटे पानिहैं ।
ग्राम कामो करसारे भवके व्यापार भारे,
ताँमो मत्त मतवारे मृत्युको न ध्यानहै ॥
जात जरा पात उतपात पेख भीतजात,
चीतमों न जात जैसे भीतमो न भानहै ।
मोहरूप मदिरा प्रमाद कर पान कीनो,
बौराभयो भवगौरा भवको न ज्ञानहै ॥ ७ ॥

श्लोकः ।

जीर्णा एव मनोरथाः स्वहृदये यातं जरा यौवनं हन्ताङ्गेषु गुणाश्च वन्ध्यफलतां याता गुणज्ञैर्विना ॥ किं युक्तं सहसाभ्युपैति बलवान् कालः कृतान्तोऽक्षमी ह्याज्ञातं स्मरशासनांघ्रियुगलं मुक्त्वास्ति नान्या गतिः॥

---

१ यह प्राणी अनेकोंके जन्म जरा मरणादि उत्पात देखताभी उनको त्याग देता है अर्थात् जैसे दीवारमें सूर्य्यका प्रतिबिम्ब नहीं पडता ऐसे ही यह जीवभी किसी वार्ताको चित्तमें नहीं लाता ।

मात्रक सवैया।

अहो विचित्र मनोरथ सगरेमें, उरमें सम्भव फल हीन। इने न आदि अंत मधचीनों, जल तरंग इव उपजत लीन॥ अनु[1] जाग्रत बालादितीन त्रिकमें, न हीन कछु सुख पतिक्षीन। जराकीन यौवनको भोजन, प्राक्रमहीन भयो मैं दीन॥ ८॥ बाँझ गुणज्ञों मों तनमें गुण अफल भये सबज्यों त्रिय बाँझ। कालक्षमा विन बली कृतां[2]तो उप[3]प्रापति अब हनें कि साँझ॥ सह[4]सा युक्ति मुक्ति हितको, शुभ जांकर मनको सँहसा जाय। हरके पाय कंजयुगहरके अवर श्रेयको कौन उपाय॥ ९॥

श्लोकः।

भ्रातः कष्टमहो महान् स नृपतिः सामन्तचक्रं च तत् पार्श्वे तस्य च सापि राजपरिषत्ताश्चन्द्रबिम्बाननाः॥ उद्रिक्तः स च राजपुत्रनिवहस्ते बन्दिनस्ताः कथाः सर्वं यस्य वशादगात् स्मृतिपदं कालाय तस्मै नमः॥ ३६॥

---

१ अनुजाग्रत् अर्थात् अनुक्षण जाग्रत् मनोरथ रहते हैं बालादि तीनोंके त्रिकमें अर्थात् बालपनकी जाग्रत् स्वप्न, सुषुप्तिमें तथा युवापनकी जाग्रतादि तीनोंमें एवं वृद्धपनकी जाग्रतादि तीनोंमें (नहीन) हीन अर्थात् कम नहीं होते यदि होते हैं तो कुछ सुषुप्तिमें क्षीण होते हैं। २ नाशक। ३ समीप आया। ४ शीघ्र।

कवित्त।

जाँके वामे दाहने सुमंत चक्र होते अग्र,
राजनकी सभा थी मयंक मुखी नारीया।
भूपनके पुत्रथे विचित्र वीर अहंकारी,
वृन्दबन्दी जनहोते वंशके उचारिया॥
अहो भाई भारी कष्ट भारी भूप भये नष्ट,
सिमृति पदे प्रविष्ट जाँकी कथा भारीया।
हिंसक प्रपंच सविरंचको असंग पुना,
ताहिकाल बीरको जुहार वार वारिया॥ १०॥

सोरठा।

अहो भ्रात अति कष्ट, जासे कालके वशिभये।
भये प्राक सभनष्ट, गये सिमृति पथ तिहँ नमो॥ ११॥

टीका-अर्द्धभुजंगप्रयात छन्द।

जिसे काल गाले। सुभूपाल माले॥
जिसे आसपासे। सुमन्त्री प्रकाशे॥ १२॥
महावीर स्याँने। सभी नीति जाँने॥
पुनर्जाहिं आगे। सभा राज लागे॥ १३॥
चल अग्रजाके। तन भूप बाँके॥
युवा द्रव्य माते। सहंकार जाते॥ १४॥
हुते चार नग्रे। सभोगा समग्रे॥
तहां राजधानी। हुती शक्र सानी॥ १५॥

त्रिया इंदुतुंडी। मनो कामकुंडी ॥
जटी लाल मोती। घनी धामहोती ॥ १६ ॥
चल भाटगाते। चिरंजीव दाते ॥
जिने कोप आगे। सभे भूप भागे ॥ १७ ॥
शिरै छत्र छाजे। दिशा चार भ्राजे ॥
करी[1] है सवारी। करीहयं[2] सवारी ॥ १८ ॥
इनें आदि राजे। हुते सासमाजे ॥
सभी काल मारे। गने कौन सारे ॥ १९ ॥
भये ते पुराने। न को ताँहिं जाने ॥
कथाजे पुराने। सुने नाग जानें ॥ २० ॥
पुनःतीनलोकी। सुनी औ विलोकी ॥
निमेषेक माँहीं। गिले काल तांहीं ॥ २१ ॥
युवा वृद्ध छोरे[3]। कहूँको न छोरे ॥
नमो तास काले। जिसे सर्व गाले ॥ २२ ॥

दोहा।

हने हनत पुन हनेगो, उत्तम मध्यम मंद ॥
गने बरोबर सर्वको, ताँते ताँको वंद ॥ २३ ॥

श्लोकः।

प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं
दत्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम् ॥

---

१ हस्ती। २ घोडे सवारकर। ३ छोकरे।

सम्मानिताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किं
कल्पं स्थितं तनुभृतां तनुभिस्ततः किम् ॥

कवित्त ।

जिन धनो कर सभ मिले मनोकाम जब,
ताँको भयो सिद्ध तब कहाँ लाभमान है ।
आरिनके शिरपर चरणको धार कर,
कहाँ भयो डारडर सोयो साभिमानहै ॥
जौसनेही जनोंधनों कर मान कीनो घना,
कहां भयो तांहि भनों तूँतो कुलभानहै ।
कल्प पर्यंत भोग भोगे जंतु कहा होग,
जाँते अंत नाशीलोक सने कारकांन है ॥ २४ ॥

दोहा ।

भयो काल भय प्रगट कर, तृतीय इति श्री आप ।
वैरागादि सुताहिं जने, हने सर्व भये ताप ॥ २५ ॥

दोहा ।

उतकंठा निज चित्तकी, कहें चतुर्थोऽध्याय ।
करत विनय नृप शंभु पहि, सात श्लोक बताय ॥ १ ॥

श्लोकः ।

एकाकी निःस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिग-
म्बरः ॥ कदा शम्भो भविष्यामि कर्म-
निर्मूलने क्षमः ॥ ३८ ॥

---

१ ब्रह्मा विष्णु आदि कारकों समेत यह लोक अर्थात् संसार विनाशी है ।

तोटक छंद।

इकएंकांनिसस्पृहशांतमना ॥ करपत्रपवित्रदिशावसना ॥
करमा निरमूलनमैनिपुना ॥ शिवजूकबह्वैममएंसादिना २

श्लोकः।

स्फुरत्स्फारज्योत्स्नाधवलिततले क्वापि पुलिने सुखासीनाः शान्तध्वनिषु रजनीषु द्युसरितः ॥ भवाभोगोद्विग्नाः शिवशिवशिवेत्यार्त्तवचसा कदा स्यामानन्दोद्गतबहुलबाष्पप्लुतदृशः ॥ ३९ ॥

कवित्त।

शांतध्वनी यामिनीकी चांदनी अमित दुत्त,
तासों गंगा तीर तलो ऊजलो लसतहै।
ताँपै सुखी वसूकहूं शिव शिव शिव कहूँ,
ऐसी वाणी भनो जैसे प्राणी दुखारतहै ॥
प्रेम उदैपाथ साथ दृगाभिग जाहिं कब,
आवैं साह साहसे रोमांच पुलकत है।
भवके आभोगनते भयो अब उदवेग,
करो ऐसी विधि वेग ऐसी मोरी मतिहै ॥ ३ ॥

श्लोकः।

स्नात्वा गाङ्गैः पयोभिः शुचिकुसुमफलै-

१ अकेला तथा इच्छा रहित।

र्चयित्वा विभो त्वां ध्येये ध्यानं निवेश्य क्षितिधरकुहरग्रावपर्यङ्कमूले ॥ आत्मारामः फलाशी गुरुवचनरतस्त्वत्प्रसादात्स्मरारे दुःखान्मोक्ष्ये कदाहं तव चरणरतो ध्यानमार्गैकधस्रैः ॥ ४० ॥

कवित्त ।

न्हायकै न्हवांऊँ गंगा पाथ साथ नाथ तुम्हैं,
शुचि फूल फलों कर रुचि धर ध्यावेंगे ।
ध्यान योग ध्यान तेरो तामै लागे मन मेरो,
शैलदरी शिलाके पर्यंक पै सुहावेंगे ॥
सुखी निजानंद कर फलाहारी रतितर,
गुरोंके वचनमों चरण थारे भावेंगे ।
समरारी थारी कृपा अनुसारे सारे दुख ।
सारें हम जदों सों दिहारे कदों आवेंगे ॥ ४ ॥

श्लोकः ।

अतिक्रान्तः कालो लटभललनाभोगसुभगो भ्रमन्तः श्रान्ताः स्मः सुचिरमिह संसारशरणाः । इदानीं स्वःसिन्धोस्तटभुवि समाक्रन्दनगिरः सुतारैः फूत्कारैः शिवशिवशिवेति प्रतनुमः ॥ ४१ ॥

---

१ जलावें ।

कवित्त ।

सुंदरीके भोगनमें सुंदर ए काल गयो,
भारके भवोट भव्यो जग मग चिरमैं ।
पायो अतिखेद गयो थाक निरवेद अब,
चहों गंगातीर पर बहों उतगिरि मैं ।
तुंग होहिं तनवार नैन पूरे प्रेमवारी,
कंठदबेनामोचार गंगा जाँके शिरमैं ।
भोगनरकागनिके हेतु कौन भजों अब,
करों ऐसी विधि भवों भवमैंनफिरमैं ॥ ९ ॥

श्लोकः ।

अनावर्ती कालो व्रजति स वृथा तन्न गणितं दशास्तास्ताः सोढा व्यसनशतसंपातविधुराः ॥ कियद्वा वक्ष्यामः किमिव बत नात्मन्यपकृतं वयो यावत्तावत्पुनरपि तदेव व्यवसितम् ॥ ४२ ॥

कवित्त ।

काल ए पुनागमी न सोतोभयो वृथाक्षीन,
तनचीन मनदीन नारी रमणीक मैं ।
सैकरे कलेशोंके प्रवेशों कर व्याकुलीजा,
सो सो दशा सही सही कहाँ कहाँ तीकमैं ॥

---

१ विरक्त हुआ चाहताहूँ ।

जो जो करों काम सो सो देतदुखग्राम मोको,
अहो वही अपकाम करों अबतीकमैं ।
प्रबल अदृष्ट दुष्ट जोरत अनिष्ट मांहि,
याँके शांत विना नाहिं शांति चीनो ठीकमैं ॥ ६ ॥

दोहा ।

नष्ट अदृष्ट न ज्ञान विन, ज्ञान न विन वैराग ।
ताँते भवनिर्वेद प्रद, जाँते भवदुख त्याग ॥ ७ ॥

श्लोकः ।

अहौ वा हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा मणौ वा लोष्टे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा ॥ तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यान्ति दिवसाः क्वचित्पुण्यारण्ये शिवशिव शिवेति प्रलपतः ॥ ४३ ॥

सवैया ।

पुण्यवने वस कौने दिने भनोभोशिवशंभुजटीसमरारी ॥
नागन मोतिनहारनमो उत शत्रुबली मैं सुमित्रमझारी ॥
माहिंमणी मृण पिण्डविषे मधफूलोंकेसाथरपाथरभारी ॥
वा त्रिणबीच त्रियाणविषैंसब मैं सम है कबदृष्टि हमारी८

श्लोकः ।

गङ्गातीरे हिमगिरिशिलाबद्धपद्मासनस्य
ब्रह्मध्यानाभ्यसनविधिनायोगनिद्रांगतस्य ॥

किं तैर्भाव्यं मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्विशङ्काः
कण्डूयन्ते जरठहरिणाः शृङ्गमङ्गे मदीये४४

कवित्त।

गंगातीर पर हिमगिरी शिला पर हम,
बान्धे पदमासनको मन इन्द्रै जीतके।
ब्रह्मके सुध्यानकी अभ्यास विधिसों निवास,
योगनिद्रा मांहिं कहों ताप चीतके॥
जरठकुरंग करे शृंगो संग कण्डू मोहिं,
सुखसों अभीत[1] मोकों जाने सम भीतिके[2]।
पारवतीनाथमें अनाथके अभीति वारे,
उत्तमादिहारे कब आवें ऐसी रीतिके॥ ९॥

दोहा।

निजविषाण कर हरिण कब, संघरसहिं मम देह।
मोहिखबरहे हरनहै, कबहै मम अस देव॥ १०॥

श्लोकः।

कदा वाराणस्याममरतटिनीरोधसि वसन्
वसानः कौपीनं शिरसि निदधानोऽञ्जलि-
पुटम्॥ अये गौरीनाथ त्रिपुरहर शम्भो त्रि-
नयन प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि
दिवसान्॥ ४५॥

---

१ निडर। २ दीवार सदृश।

कवित्त ।

काशीगंगाके किनारे भवते किनारे होके,
कदों वसों वसन कौपीन एक धारके ।
दोऊ हाथ जोरकर नायमाथ नमों करो,
मृदु वाणी साथ ररों नाम समरारिके ॥
भो प्रभो भवानीवर शंकर त्रिनेत्र हर,
त्रिपुरारी चन्द्रधर भवभयहारिके ।
क्षणसमदिन सब मोरे बीत जावें जब,
ऐसे अहआवे कब कह्योकृपाधारके ॥ ११ ॥

श्लोकः ।

वितीर्णे सर्वस्वे तरुणकरुणापूर्णहृदयाः स्मरन्तः संसारे विगुणपरिणामा विधिगतीः ॥ वयं पुण्यारण्ये परिणतशरच्चन्द्रकिरणैस्त्रियामा नेष्यामो हरचरणचित्तैकशरणाः ॥ ४६ ॥

शंकर छंद ।

कबदेहहुमैं अरथीन सर्वस जोर कर कर दोय ॥
कब तरुण करुणा साथ अंतःकरण पूरण होय ॥
दुर्कामको परिणाम योनी तिरयगादि अपार ॥
तिहँदुःखसीमा पिखडरों निजमंद कर्म निहार ॥१२॥
जिसपुण्यवनमाँहशरदहिमकराकिरणपरिणितचारु ॥

बनतासमैं सरवासमैं निर्वेदसहित विचार ॥
मम चित्तको हर चरणकी तर शरणहोय सराग ॥
जब इम वितावों विमल रैना तबी मैं बडभाग॥१३॥

दोहा ।

तज स्वतंत्रभवभोग कब, लखौंनिजातम आप ।
देहविषै संदेहविन, विचरौं तब निहपाप ॥ १४ ॥

श्लोकः ।

क्षान्तं न क्षमया गृहोचितसुखं त्यक्तं न संतोषतः सोढा दुःसहशीतवाततपनाः क्लेशान्न तप्तं तपः॥ध्यातं वित्तमहर्निशं नियमितप्राणैर्न शम्भोः पदं तत्तत्कर्म कृतं यदेव मुनिभिस्तैस्तैः फलैर्वञ्चितः ॥ ४७ ॥

दोहा ।

सुनों कर्म जो जो करे, सो सो हमहूं कीन ।
तिनकर्मोंके फलों कर, हमठागे मतिहीन ॥ १५ ॥
मुनिन लह्यो सुखरूप फल, मोहिं दुःख फललीन ।
करे कर्म समविषम फल, इउँमैंठाग्योदीन ॥ १६ ॥
तजे गृहोचित सुख मुनिन, करसंतोष विवेक ।
अहं विदेश कलेश कर, त्यागे भोग अनेक ॥ १७॥
ऋषिन क्षमाकर खलोंके, सोढे दुर्वचनादि ।
मैंभी सहे कुवाकपर, कर याचन सेवादि ॥ १८ ॥

शीत वात आतप दुसह, पुना कलेश अपार ।
मुनिन सहे तप धार कर, हमों सहे सह नारि ॥ १९॥
हर पद पद्म युगल मुनो, ध्मायो मनकृत वाच ।
प्राणो कर दिन रातिमैं, ध्यायो धनको साच ॥२०॥
क्षमा तृप्ति युत दुर्वचन, सहों तजों गृह भोग ।
सरुचि ध्याँउँहरपाँउमैं, तब तासम फलहोग ॥२१॥
ऐसे शंकरवंत[1] दिन, हे हर शंकर शंभु ।
होंहि कबी सम मुनिनके, मै विचरों तज दंभ॥२२॥
स्वरग अखय सुख लाभ हित, करे मखादि सराग ।
करे याग ऋषिवाक गहि, पुनामुनिन मम ठाग ॥ २३ ॥
ताँ क्रतु[2]के फलको जबै, परामर्श[3] मैं कीन ।
जनत पीनभय मम हृदय, होय पुण्य जब क्षीन ॥२४॥
गिरतनाक गिरिते अधे, पुरुष पषाण तुरंत ।
सहित कष्टते कष्ट तर, अनुभव करत सुजंतु ॥ २५ ॥
जन्म मरण दृढ करणको, अतिदृढ करण सुभोग ।
ताहित मैं क्रतु करे भव, को मोसम खल होग ॥ २६ ॥
भोग बडाई कर मुनो, मोहि लुभायो चित्त ।
कर्मगर्त्त माहिं डार मम, हर्‌यो मुक्ति सुखवित्त ॥ २७ ॥

सोरठा ।

कर सन्तोष विवेक, तजे न गृहके उचित सुख ।
त्यागे भोग अनेक, भ्रमण विदेश कलेश कर ॥ २८ ॥

---

१ कल्याण करनेवाले । २ यज्ञ । ३ विचार ।

दोहा।

अहो क्षमा कर खलोंके, सहे न दुर्वचनादि।
सोंढे मोहिं कुवाक पर, कर याचन सेवादि॥ २९॥
शीत वात आतप दुसह, पुनः कलेश कदंब।
मैं न सहे तप धार कर, सोंढे बीच कुटुम्ब॥ ३०॥
ध्यायो धनको अहर्निशि, मन कृत वचन सनेम।
ईश्वरके पदपद्मको, ध्यायो त्यों न सप्रेम॥ ३१॥
ए गुरु पश्चात्ताप उर, भयो न आतम वित्त।
विन विचार मैं मुग्धको, लियो विरुयों भव जित्त॥३२॥
दृष्टं अदृष्ट सनेह युत, उरकागर पर वरण।
भोग राग मय सोनलय, अंकविचार अवरण॥३३॥

सोरठा।

प्रभु अनाथके नाथ, मैं अनाथके माथ पर।
कृपादृष्टिके साथ, शिवानाथ निज हाथ धर॥ ३४॥
दोहा–विन वैराग्य विवेक मैं, तव पदपंकज टेक।
श्रीशंकर मम शंकरो, दे वैराग्य विवेक॥ ३५॥

श्लोकः।

धन्यानां गिरिकन्दरे निवसतां ज्योतिः परं
ध्यायतामानन्दाश्रुकणान् पिबन्ति शकुना

---

१ दृष्ट अदृष्ट रूप स्नेह अर्थात् तैलसे चिकना हुआ तथा भोग रूपी रंगसे रंगीत हुआ (उर) चित्तात्मक कागज विचार रूप निर्मल अंकों अर्थात् अक्षरोंको ग्रहण नहीं कर सकता.

निःशङ्कमङ्केशयाः ॥ अस्माकं तु मनोरथोपरचितप्रासादवापीतटक्रीडाकाननकेलिकौतुकजुषामायुः परं क्षीयते ॥ ४८ ॥

चौपाई ।

भवमेवहीपुरुषबडभागी । इतउतभोगचाहिजिहँत्यागी ॥
करनिवासगिरिकंदरमाँहीं । परमप्रकाशरूपहरध्याहीं ॥
तिसेध्यानकेआनँदकरके । तिनहिद्दगनतेउदकजुसरके ॥
बैसानिशंकअंककेमाँही । अचवहिंविहगसरितजलताँही ॥
धन्यजनोंकीउमराऐसे । परीहोत क्षय भाषी जैसे ॥
हममातिमंदअधन्यकुभागी । भुक्तमुक्तिबिबतेंबैरागी ॥
केवलव्यर्थमनोरथसंगा । ममशुभअवधभवतपरिभंगा ॥
बापीबागतडागकिनारे । सुंदरमंदिरहोंहिहमारे ॥ ३९ ॥
शुभगभामिनीसहतिहँ अन्तर । करहिसुक्रीडाकोलिनिरंतर
असमनराजकौतुकहिंध्यावत । असीआयुषापरेबितावत ॥
किंचित संचिताभोगमझारी । परीहोतक्षयवयसहमारी ॥
तिनोसमानसुदिवसहमारे । कब आवहिंगेहेसमंरारे ॥ ४१ ॥
दोहा-निज[2] भव हित भवत्याग हित, भो भव[1] मैं तव ध्याउँ ।
शेष आयु निज कबवयं, सुखसों तथा विहाउँ ॥ ४२ ॥
भरत शतक वैराग्यकोऽध्याय चतुर्थों बस्स ।
करीशुभेच्छा भरत नृप, ताविन जीवन भस्स ॥ ४३ ॥

---

१ हे महादेव । २ अपने कल्याणके लिये ।

दोहा।

अब पञ्चम अध्यायमें, सात श्लोक अनूप।
विधिको देत उलाहने, बहुविधि भरथरि भूप॥ १॥

श्लोकः।

प्रियसखि विपद्दण्डव्रातप्रपातपरम्परापरि-
चयबले चिन्ताचक्रे निधाय विधिः खलः॥
मृदमिव बलात्पिण्डीकृत्य प्रगल्भकुलाल-
वद् भ्रमयति मनो नो जानीमः किमत्र
विधास्यति॥ ४९॥

कवित्त।

मो मन को अज खल मृदपिंड सम खलु,
करके इकत्र चिंताचक्र परधरेहै।
दुःखमाँझ दुःखहोर लाभसांझभोर दंड,
जोरकर जोरकर फेरे चल करेहै॥
अत्र मित्र वल्लभ प्रगलभ कुलालवत,
कौनेविधि करे विधि वैतो घरे घरे है॥
अहो मैंन जानो भोरा दैवमोते मुख मेरा,
चिंता चिता विषे मोरा चित्त नित्य जरेहै॥ २॥

श्लोकः।

अभिमतमहामानग्रन्थिप्रभेदपटीयसीगुरु-
तरगुणग्रामाम्भोजस्फुटोज्ज्वलचन्द्रिका॥

विपुलविलसल्लज्जावल्लीवितानकुठारिका
जठरपिठरी दुष्पूरेयं करोति विडम्बनम्॥५०

कवित्त ।

कुलको जो मान सो महान दृढ़ग्रन्थि आहि,
ताहिके प्रभेदनकै माँहि स्यानी भारी है ।
गुण गुण कवी वारी कोखिरानवारी शुभ्र,
सोम उजियारी लाज लताको कुहारी है ॥
मोक्षभोगसुख आरी दीनता कलेशक्यारी,
धीरजके दीपको समान व्यारी हारी है ।
ऐसी पेटकी पिटारी लाई क्रूर सुखचारी,
पूर पूर सबहारी ठागी विश्व सारी है ॥ ३ ॥

श्लोकः ।

हिंसाशून्यमयत्नलभ्यमशनं धात्रा मरुत्कल्पितं व्यालानां पशवस्तृणाङ्कुरभुजः सृष्टाः स्थलीशायिनः ॥ संसारार्णवलङ्घनक्षमधियां वृत्तिः कृता सा नृणां यामन्वेषयतांप्रयान्ति सततं सर्वे समाप्तिं गुणाः॥५१॥

कवित्त ।

नागोंको अहार व्यार माटी कीनो मुख चार,
उद्यमनहिंसा वार सुखलाभ होय है ।

अंकुर तृणादि स्वादु सुधासों प्रसाद पाय,
पशुवृंद अह्लाद धार धरा सोय है ॥
रचीनरोंकी कुवृत्ति सिद्धजो न विना वित्त,
धनसिद्धता अमित्त गुण नित्य खोय है ।
जनोंसों विरोध विधि कर कहा कीनों सिद्ध,
रंडीपूत समताहिं दंडी नाहिं कोय है ॥ ४ ॥

सोरठा ।

भवनिधि तरण मँझार, बली नरनकी तरुण धी ।
विधिना ताँहिं अधार,कत उलटी विधिना कियो॥५॥

श्लोकः ।

आधिव्याधिशतैर्वयस्यतितरामारोग्यमु-
न्मूल्यते लक्ष्मीर्यत्र पतत्रिवच्च विवृतद्वारा
इव व्यापदः ॥ जातं जातमवश्यमाशु
विवशं मृत्युः करोत्यात्मसात्तत्किन्नाम
निरङ्कुशेन विधिना यन्निर्मितं सुस्थितम्॥८२

कवित्त ।

आधिव्याधि वृंदरोग ताँहींके संयोगकर,
आयुमें अरोगको वियोग भयो अति है ।
पुनारमा जहां वसे तातें खगवत नसे,
खुलेद्वारे वत धसे विपता महत है ॥
जो जो निरभयो भयो पर वशिताहीं काल,

ततकाल निज वशि अवश करत है।
अजंजो अकुंडे कीनों काँकी शुभ थिति चीनों,
वेद्लोकमतसों न सुखीनको सत है ॥ ६ ॥

श्लोकः।

क्वचिद्वीणानादः क्वचिदपि च हाहेति रुदितं
क्वचिद्विद्वद्गोष्ठी क्वचिदपि सुरामत्तकलहः॥
क्वचिद्रम्यारामा क्वचिदपि जराजर्जरत-
नुर्न जाने संसारः किममृतमयः किं
विषमयः ॥ ८३ ॥

कवित्त।

बांसुरीकी ध्वनी कहूँ हाहा इति रोना कहूँ,
श्रेष्ठनकी गोष्ठी कहूँ दुष्टता हरति है।
कहूँ अन्ध धी सुराची महाकटुवाची कहूँ,
रामाअभिरामा रमा मनहरै अति है॥
कहूँ दुष्ट कुष्ट संग गरे अंग कष्टसहें,
सदा जलपत रहें जैसे जलपति है।
रचना निरंकुशविरंचिकी न जानें हम,
सुधारूप है कि, विषरूप ए जगत है ॥ ७ ॥

१ निरंकुश ब्रह्माने जो जो कुछ बनाया है उनमें हम कौन वस्तुकी शुभ स्थिति देखें हमारेको तो वेदशास्त्रसे तथा स्वानुभवसे यही प्रतीत होता है कि, न कोई सुखी जीव है और न कोई ब्रह्माका बनाया पदार्थ सत्यही है ।
२ समुद्रकी तरह गुडगुडाते रहते हैं ।

श्लोकः।

ये संतोषसुखप्रमोदमुदितास्तेषां न भिन्ना मुदो ये त्वन्ये धनलुब्धसङ्कुलधियस्तेषां न तृष्णा हता॥ इत्थं कस्य कृते कृतं च विधिना तादृक् पदं सम्पदां स्वात्मन्येव समस्तहेममहिमा मेरुर्न मे रोचते॥ ५४॥

कवित्त।

रुचित सुमेरु मोन आवै काहूँ काम जोन,
निजगौरतामैं सोना सदा गलतान है।
जीव जे संतोष कर त्रिपत सदीव नर,
ताँको शेष न आनंद रह्यो अछुआन है॥
पुना जेई आन जन धन लोभकर मन,
व्याकुल हैं जाँके ताँकी तृषना न हान है।
कौनके निमित्त ऐसी संपदा अमित्त रची,
इति विधि करके न विधि बुद्धिमान है॥ ८॥

श्लोकः।

सृजति तावदशेषगुणाकरं पुरुषरत्नमलंकरणं भुवः॥ तदनु तत्क्षणभंगि करोति चेदहह कष्टमपण्डितता विधेः॥ ५५॥

कवित्त—पुरुष रतन गुण गणको सदन पुन,
पौरुषको आयतन परमप्रवीना है।

सारी धराको शृंगार जडाजडको शिदार,
मोक्ष भोगको भँडार चारु लख लीना है ॥
चतुरवदनको चतुर हम चीनो तब,
प्रथमजो ऐसे नरको तपत कीना है ।
ताके पाछे ततक्षण नष्ट करें हाहाकष्ट,
इतविधि विधिनाको पण्डित न चीना है॥९॥

दोहा ।

भरतशतक वैरागको, ऽध्यायपंचमो अन्त ।
दोष अरोप विरञ्चिको, हरिदयालुवरणंत ॥१०॥

दोहा ।

षष्ठे श्रेष्ठ जननकी, वरणन करें प्रशंस ।
शुभश्लोक सत्राँतिसे, हृदय कमलको हंस ॥ १ ॥

श्लोकः ।

रम्यं हम्यर्तलं न किं वसतये श्राव्यं न गेयादिकं किं वा प्राणसमासमागमसुखं नैवाधिकं प्रीतये ॥ किंतूद्भ्रान्तपतत्पतङ्ग-पवनव्यालोलदीपाङ्कुरच्छायाचञ्चलमाकलय्य सकलं संतो वनान्तं गताः ॥ ५६ ॥

छप्पय ।

गये संत बन माँहिं नाहिंको जंतु जाँहिं माहिं ।
वसन हेतु क्याधाम तलोअभिरामहुतो नाहिं ॥

श्रवणयोग्यगीतादि कहाँथो ताँ वियोग दुख।
कै न अधिक रुचि हेतु प्राणसम मित्र संग सुख॥
तेहुते सर्वपर तिहँ तजै दीपशिखावत तरल पिख।
यतभ्रमतो पतत पतंगके पंखपवनकरचपल शिख २

श्लोकः।

ब्रह्माण्डमण्डलीमात्रं किं लोभाय मनस्विनः॥ शफरीस्फुरितेनाब्धेः क्षुब्धता जातु जायते॥ ८७॥

सवैया।

यहिमंडलमात्रप्रपंच सबी ततवेतनको कतकारणछोभा। जिम सागरमें मछरीमछरीउछरे मछरीकछुहोतसुलोभा॥ तिमनेकलुभायकसेनातिसे क्षणक्षीणलखीतिनलोककीशोभा। शुकतीज्ञभ्रमातनरूपोमृषाततवेतनकोनतथा तिहँ क्षोभा॥३॥

श्लोकः।

सखे धन्याः केचित् त्रुटितभवबन्धव्यति-

---

१ सूर्य्य या चंद्रको रोधक परिवार। २ जैसे मछलीके चित्तमें दूसरी छोटी मछली पकडनेका लोभ होताहै तो वह उछलती है परन्तु सागरको क्षुब्ध नहीं करसकती। ३ वैसेही मछलियोंकी तरह परस्पर एक दूसेरेके विघातक संसारके पदार्थ तत्त्ववेत्तारूप समुद्रको नेकभी (लुभाय) क्षुब्ध नहीं करसकते क्योंकि (क्षण क्षीण लखी) इत्यादि। ४ जैसे शुक्तिके सच्चे ज्ञानवाले पुरुषको उसमें मिथ्या रूप्यकी प्रतीति भ्रमावती नहीं वैसेही स्वाधिष्ठानमें मिथ्या प्रतीयमान संसारभी तत्त्ववेत्ताको क्षोभकारक नहीं है।

करा वनान्ते चित्तान्तर्विषमविषयाशीविषगताः ॥ शरच्चन्द्रज्योत्स्नाधवलगगनाभोगसुभगां नयन्ते ये रात्रिं सुकृतचयचित्तैकशरणाः ॥ ५८ ॥

सवैया ।

नित पुण्य परायण जाँचित केवलताँभयबंध हन्यो गनहै । मन पन्नग क्रूरमँझार अहं विषमूल सनेजुति नेहन है ॥ वरशारद चंद्रकी चाँदनीसों यहिव्योमतलो उजलो वनहै । बसजो बनमैं अस-रैन बितावत जो बनमैं जनसो धनहै ॥ ४ ॥

श्लोकः ।

मही रम्या शय्या विपुलमुपधानं भुजलतावितानं चाकाशं व्यजनमनुकूलोऽयमनिलः ॥ स्फुरद्दीपश्चन्द्रो विरतिवनितासङ्गमुदितः सुखं शान्तः शेते मुनिरतनुभूतिर्नृप इव ॥५९ ॥

सवैया ।

शुचिचारु घनी क्षिति सेजबनी मृदु द्वैभुजवेलविशालसिरानो । सियरोगतिमंदसुगंधवहेयहिबात अहैव्यजनोखंवितानो ॥ विधुदीपलसे तपतादि-

१ आकाशका चंदोआ ।

ग्रसेशुधन्नुद्धिवधूमिलमोदमहानो। मुनिशांतस्व-
रूप अनूपविभूतिसों भूपतिकेसमसोवतमानो ॥५॥

श्लोकः।

चाण्डालः किमयं द्विजातिरथ वा शूद्रोऽथ
किं तापसः किं वा तत्त्वनिवेशपेशलमति-
र्योगीश्वरः कोऽपि किम्॥इत्युत्पन्नविकल्प-
जल्पमुखरैः सम्भाष्यमाणा जनैर्न क्रुद्धाः
पथि नैव तुष्टमनसो यान्ति स्वयं योगिनः६०

कवित्त।

कहाँ एचंडाल जात मगमो द्विजाति किधों,
कैधौं कोऊ शूद्रहै कि चोर वा तपेशहै।
तत्त्वके प्रवेशमें प्रवीन मति मान उत,
उत्तम योगेशको न चीने कौन वेषहै॥
इतिविधि कर जो संभाषमाण जननके,
मुखोंकर संभव विकल्प अशेष है।
सुनें गुनें मुनि ताँहिं वरशाप देत नांहिं,
जाहिं सुखी पंथ माहिं जैसे नक्षत्रेश है॥ ६॥

श्लोकः।

प्राणाघातान्निवृत्तिः परधनहरणे संयमः

१ नक्षत्रेश अर्थात् चन्द्रको तरह अथवा क्षत्रेश सर्व क्षत्रिय राजाओंके महाराजभी जैसे सुखपूर्वक नहीं चलसकते।

सत्यवाक्यं काले शक्त्या प्रदानं युवति-
जनकथामूकभावः परेषाम् ॥ तृष्णास्रोतो-
विभङ्गो गुरुषु च विनयः सर्वभूतानुकम्पा
सामान्यः सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिः श्रेय-
सामेष पंथाः ॥ ६१ ॥

कवित्त ।

हिंसा नाहिं करे परद्रव्यको न हरे सत्य,
वचन उचारे पुण्य समें पुण्य करहै ।
यथावित्त कथा परनारोंकी न भनें सुने,
ताँते गुंगबोला बने भोला सम चरहै ॥
तृष्णाको प्रवाह भंग गुरोंविषे नम्र अंग,
मित्रभाव सबसंग करे हर हरहै ।
गायो सब ग्रंथनमें संत ऐसे पंथनमें,
रागद्वेष मोखचरे जैसे दिनकरहै ॥ ७ ॥

श्लोकः ।

पाणिः पात्रं पवित्रं भ्रमणपरिगतं भैक्ष्य-
मक्षय्यमन्नं विस्तीर्णं वस्त्रमाशादशकमप-
लं तल्पमस्वल्पमुर्वी ॥ येषां निःसङ्ग-
ताङ्गीकरणपरिणतिः स्वात्मसन्तोषिणस्ते

१ जैसे सूर्यका गमनागमन किसीके राग द्वेष पूर्वक नहीं है साधु पुरुषको भी वैसेहीं होना चाहिये ।

धन्याः संन्यस्तदैन्यव्यतिकरनिकराः कर्म निर्मूलयन्ति ॥ ६२ ॥

कवित्त।

पाणिपात्रपै पवित्र भिक्षाअन्न अक्षैचित्र,
द्वारे द्वारे भ्रमे मिले गिले निरदोषहै,।
दशों दिशा चैल विसतीरण अमैल पुन,
तलप अनंता[1] की अनंत सुख घोषहै॥
करमोंका मूल मूलाविद्या[2] निरमूल जाकी,
दीनता निवारी सारी स्वातम संतोष है।
भेदाभेद भ्रम भागो ब्रह्मवित वीतरागो,
मानअपमान ते न उदे मोद रोषहै॥ ८॥

श्लोकः।

कौपीनं शतखण्डजर्जरतरं कन्था पुनस्तादृशी निश्चिन्तं सुखसाध्यभैक्ष्यमशनं शय्या श्मशाने वने॥ मित्रामित्रसमानतातिविमला चिन्ताथ शून्यालये ध्वस्ताशेषमदप्रमादमुदितो योगी सुखं तिष्ठति ६३॥

गीया मालतीछंद।

शत खंड क्षीण कुपीन जाकी तास समजिहँ गोदरी।
सुखसाध्य भिक्षाहार शय्या वन मशाने गिरिंदरी[3]॥

---

१ अनन्त अर्थात् भूमिकी शय्या यावत् सुखोंका घर है। २ संसारमात्रके आदि कारणका नाम मूलाविद्या है। ३ पर्वतकी कंदरा।

पिखशत्रुमित्र समान मुखद्युति शून्यसदनो मैं सदा ॥
निर्मलनिजातमको भजें सुस्वरूपते जनसर्पदा ॥ ९ ॥

दोहा ।

चरहिं स्वतंत्र निरंकुशे, सप्रमोद मदनष्ट ॥
अधिष्ठानसुप्रबोधकर, कल्पित नष्टसमष्ट ॥ १० ॥

श्लोकः ।

आसंसारं त्रिभुवनमिदं चिन्वतां तात तादृग् नैवास्माकं नयनपदवीं श्रोत्रवर्त्मागतो वा ॥ योऽयं धत्ते विषयकरिणीगाढरूढाभिमानः क्षीबस्यान्तःकरणकरिणः संयमालानलीलाम् ॥ ६४ ॥

ललितछंद ।

तीन भवन मय सर्वसरग को आशमंत मैं ढूँढ्यो ताता ।
कहूँ न देखा सुना कहूँ नहिं ऐसो जन जो जन्योविधाता ॥
जनको अंतःकरण करी सम विषयरूपकारिणीमिलराता ।
संयम संगल तिहँ पग मैं जिहँडारयोलीलाकरभोभ्राता ११

दोहा ।

सुषुपति वत जाग्रत विषे, तेज त्रिधा जिहँ भोग ॥
ऐसो इंद्रियजीत जन,को इक सुस्थितहोग ॥ १२ ॥

---

१ कायेंन वाचा मनसा अथवा सात्विक राजस तामस किंवा अनिच्छ परेच्छ स्वेच्छ इत्यादि ।

श्लोकः।

शय्या शैलशिला गृहं गिरिगुहा वस्त्रं तरूणां त्वचः सारङ्गाः सुहृदो ननु क्षितिरुहां वृत्तिः फलैः कोमलैः॥ येषां नैर्झरमम्बुपानमुचितं रत्येव विद्याङ्गना मन्ये ते परमेश्वराः शिरसि यैर्बद्धो न सेवाञ्जलिः॥ ६९॥

नील छंद।

शैलशिला सिहजा गिरिकंदर मंदिरहैं।
वृक्षनके छिलके पट वा दिग अंबरहैं॥
मित्र कुरंग समूह सही तिन संगचरे।
कोमल[1] पुण्य फलीन फलोंकर प्राणधरे॥ १३॥
शीतल स्वेच्छित स्वच्छ सुगंधित मिष्ट घना।
उचित अंबु गिरिंदनको अचते जु जना॥
ब्रह्मविचारवती सुमती युवती कु सदा।
धार रिदे महिं मोद लहैं न तजें सुकदा॥ १४॥
जो निज प्राणन त्राण कि कारण पाँणि[2] बिबे।
जोर नमों शिरसों न करे कहुँ अग्रकबे॥
जो इति रीति पुमान विराजत लोक विखे।
मानतताँ परमेश्वरमैं सुनजीव सखे॥ १५॥

---

१ कोमल तथा पुण्यरूप पवित्र हैं फल जिनके ऐसे वृक्षोंके फलों कर।
२ अपने दोनों हाथोंको।

श्लोकः ।

क्वचिद्भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्य्यङ्क-
शयनं क्वचिच्छाकाहारः क्वचिदपि च
शाल्योदनरुचिः॥ क्वचित्कन्थाधारी क्वचि-
दपि च दिव्याम्बरधरो मनस्वी कार्यार्थी
न गणयति दुःखं न च सुखम् ॥ ६६ ॥

कवित्त ।

कबी भूमि आसन सिंहासनपै बास कबी,
कबी भिस ग्रास कबी व्यंजन अहारहै ।
कबी शतखंडवती गोदरीको ओढे जती,
कंबरको कबहूँ दिगम्बरको धारहै ॥
कबी भानु कर तपे कबी शीश छत्र दिपे,
कहू सत्कार होत कहूँ त्रिसकारहै ॥
तदपि न संत जन सुखी दुखी होत मन,
आतमा असंग लखे देहको विहारहै ॥ १६ ॥

दोहा ।

क्रिया स्वप्न प्रतिबिंबते, बिंबप्रबुद्ध अरंग ॥
तथा त्रिधा कृतकालत्रय, जीवनमुक्त असंग॥ १७॥

---

१ जैसे स्वप्नगत लोभ भय क्रिया आदि प्रबुद्ध पुरुषकी हानिकारक नहीं हैं तथा जैसे प्रतिबिम्ब गत अनेक प्रकारके वर्ण बिम्बमें स्पर्श नहीं करसकते एवं--

श्लोकः ।

भिक्षाशी जनमध्यसङ्गरहितः स्वायत्त-
चेष्टः सदा दानादानविरक्तमार्गनिरतः
कश्चित्तपस्वी स्थितः ॥ रथ्याक्षीणविशी-
र्णजीर्णवसनैः सम्प्राप्तकन्थासखो निर्मानो
निरहंकृतिः शमसुखाभोगैकबद्धस्पृहः ॥६७

कवित्त ।

जाँच जाँच अन्न खातो आन देनलेन घातो,
नीच जन संग होतो स्वत आतो जातो है ।
विचरे अलग मगमाहिं नाहिं जग माँहिं,
काहूँसों विरोध नातो बोधसिंधु नातो है ॥
गली गली माहिं बीन गली गली टली लीन,
ताको कंथा सीता पीन खीन सीता वातो है ।
अहंकृति वृत्ति रातो नाँहि निरमान गातो,
जाँको मनमीन ब्रह्मानंद सिन्धु मातो है ॥ १८ ॥

दोहा ।

चितसों मिल चितसो भयो, जिहँ चित तज निजबान ।
असजीवन मुकते पुरुष, नहिं मुके जगजान ॥ १९ ॥

–त्रिधाकृत अर्थात् शुक्ल कृष्ण अशुक्लको कृष्णभेदसे तीनप्रकारके कर्म अथवा भूत भविष्यत् वर्तमान क्रिया किंवा कायिक वाचिक मानसिक क्रियासे जीवन्मुक्त पुरुष तीनों कालमें असंग है ।

श्लोकः ।

आशानामनदी मनोरथजला तृष्णातर-
ङ्गाकुला रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्य-
द्रुमध्वंसिनी ॥ मोहावर्त्तसुदुस्तराऽतिग-
हना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी तस्याः पारगता
विशुद्धमनसो नन्दति योगीश्वराः ॥ ६८ ॥

कवित्त ।

आशा नाम सरी मनोरथ नीर भरी करी,
तृषणा तरंगो खरी व्याकुली गँभीर है ।
धीरजको तरु हारी बुद्धि नावको निवारी,
भव सिंधु[1] गति वारी विपता समीर[2] है ॥
मदनादि खगंभीर[3] रागद्वेष ग्राहगीर,
मोहचक्र याँको नीर जारे वाको सीर है ।
ऊँचे चिंता तटी जाँते तरनी कठिन ताँते,
भोगी ताँमै वहे योगी वहें पार तीर है ॥ २० ॥

---

१ इस आशारूप नदीकी संसारसमुद्रमें गति है ।

२ विपत्तिरूपी समीर (वायु) बुद्धिरूपी नौकाको चलने नहीं देता ।

३ कामादि पक्षीगणकी इसके किनारे भीढ है तथा रागद्वेषादि अनेक ग्राह (नक्र) इसमें जीवोंको पकडनेवाले हैं तथा मोहरूप (चक्र) घुमन घेरोंवाला इसका जल है ऐसा (बांका) टेढा ठंढा है कि मानो स्पर्श करने मात्रसे जलाता प्रतीत होता है ।

सोरठा ।

सुख स्वरूप ते साधु, निकल गए तिहँ सरतमो ।
आशा नदी अगाध, निकल लए जन इतरगण॥२१॥

श्लोकः ।

न भिक्षा दुष्प्रापा पथि पथि मठारामसरितः फलैः सम्पूर्णा भूर्विटपिमृगचर्मापि वसनम् ॥ सुखे वा दुःखे वा सदृशपरिपाकःखलु तदा त्रिनेत्रं कस्त्यक्त्वा धनलवमदान्धं प्रणमति ॥ ६९ ॥

नराच छंद ।

पथे पथे न भीख कष्ट साथ हाथपै परे ।
मठे मसान बाग किं युगांत आगसों जरे ॥
समूह भूमिपै फली फलें कहाँ नद फलें ।
मृगानके मृगान किं न शीत वातको दलें ॥ २२ ॥
इसो समाज आजलौ विराजमान हैं सभी ।
इनेहुते त्रिनेत्रको महानधी तजे कबी ॥
पुना कबे भजे धनं कणी मदांध जन्तुको ।
वसै इने वने भजे निजातमा अनंतको ॥ २३ ॥
समान पाप पुण्यके विपाक दुःख सुःखको ।
लखे चरे बने न राग द्वेष यों विदुःखको ॥
इसे पुमान लोकमैं अशोक कोइके कहूँ ।
विलोक है अनेको जु ब्रह्म रूप एकहूँ ॥ २४ ॥

श्लोकः ।

महादेवो देवः सरिदपि च सैवामरसरित्
गुहा एवागारं वसनमपि ता एव हरितः ॥
सुहृद्वा कालोऽयं व्रतमिदमदैन्यव्रतमिदं
कियद्वा वक्ष्यामो वटविटप एवास्तु
दयिता ॥ ७० ॥

कवित्त ।

देव एक महादेव नदी देवनदीसेव,
गिरि गुहा धाम एव चीर दिशा चारहै ।
एह काल मित्र नीको व्रतनिरदीनताको,
संगबुद्धि युवतीको प्रिया बटडार है ॥
सुतानिरवैरता कुमार ब्रह्मको विचार,
और कहा भनों याको बन्यो या आचारहै ।
ऐसे सदाचार परवार कर जो ऊनर,
सदापरवारचो सदा ताहिको जुहार है ॥ २८ ॥

श्लोकः ।

भिक्षाहारमदैन्यमप्रतिहतं भीतिच्छिदं
सर्वदा दुर्मात्सर्यमदाभिमानमथनं दुःखौ-
घविध्वंसनम् ॥ सर्वत्रान्वहमप्रयत्नसुलभं
साधुप्रियं पावनं शम्भोः सत्रमवार्यमक्षय-
निधिं शंसन्ति योगीश्वराः ॥ ७१ ॥

कवित्त।

भिक्षाहरयो अन्न गुणगणोंके संपन्न अक्षै,
निधि अयतन लाभदीनता अभाव है।
दुर मतसर त्रास मद अभिमान आश,
हने दुःख राशि सने जने शांति भाव है॥
नाहिं प्रति हत है सकल काल सत है,
अखिल देश गत है महेश यज्ञ गाव है।
हिंसा बाध निरोपाध भनत प्रशंसा साधु,
मुख्यमोक्ष साधनमों साधनको भाव है॥ २६॥

दोहा—शम दमादिके पुष्टिहित, गर्वहतार्थ सप्रीत।
गहे सिद्ध परमार्थ हित, भिक्षा अन्न अतीत॥२७॥

श्लोकः।

पाणिं पात्रयतां निसर्गशुचिना भैक्ष्येण सन्तुष्यतां यत्र क्वापि निषीदतां बहुतृणं विश्वं मुहुः पश्यताम्॥ अत्यागेऽपि तनोरखण्डपरमानन्दावबोधस्पृहां मर्त्यः कोऽपि शिवप्रसादसुलभां सम्पत्स्यते योगिनाम्॥ ७२॥

कवित्त।

परेपाणिपात्रपै स्वभावक पवित्रभिक्षा,
ताँसोंमाण रक्ष्या करै जहाँ चहे बहे है।

बार बार विश्वको निहारतृण भारवत,
करेत्रिसकार सदा चारमाहिं रहे है ॥
तनुके अत्याग लग शुभमग लगरहे,
देहेजीवभावको स्वभाव ब्रह्म गहे है ।
ऐसी दैवी संपदा न लहे दैवदया विन,
ईशकृपाते अनीशं निजरूप लहे है ॥ २८ ॥

श्लोकः ।

स्थितिः पुण्यारण्ये सह परिचयो हन्त हरिणैः फलैर्मेध्या वृत्तिः प्रतिनदि च तल्पानि दृषदः ॥ इतीयं सामग्री भवति हरभक्तिं स्पृहयतां वनं वा गेहं वा सदृशमुपशान्तैकमनसाम् ॥ ७३ ॥

कवित्त-शुचिबनोंके निवासी मृगों संग हांसीखेल,
मेलदासदासीको न मेध फल आशी हैं ।
कदीप्रति नदी तट कदी शामशाने मठ,
कबहूँ पखान बटतरुतरे वासीहैं ॥
केवल प्रसन्न मन तुल्यआयतन वन,
तदपि एकांत घन वासी सुक राशीहैं ।
ईशके उपासीकी प्रकाशी या विभूति ताँहिं,
गावें सुने ध्यावें नाँहिं पावें यम पाशी हैं ॥२९॥

---

१ यह अल्पज्ञजीव ।

दोहा ।

भरत शतकवैरागको, इति षष्ठो अध्याय ।
सुजनोंके गुण गण भने, हरीद्याल शिर नाय ॥ ३० ॥

सतें तीन भूपानसों, भयो पृथक संवाद ।
तिनें शलोक भने तिनें, हनें मोह गर्वाद ॥ १ ॥

सोरठा ।

विनरुचि कहूँ नरेंद्र, दीन भरत प्रति भोग कछु ।
तत अलीन नाथेंद्र, तीन हेतु कर चीन अप ॥ २ ॥
राज अंश समरक्त, भोग योग न विरक्तको ।
दान रक्तविन भक्ति, तव मम सम पद हेतु त्रय ॥ ३ ॥

श्लोकः ।

त्वं राजा वयमप्युपासितगुरुप्रज्ञाभिमानो-
न्नताः ख्यातस्त्वं विभवैर्यशांसि कवयो
दिक्षु प्रतन्वन्ति नः ॥ इत्थं मानद नाति
दूरमुभयोरप्यावयोरन्तरं यद्यस्मासु परा-
ङ्मुखोऽसि वयमप्येकान्ततोनिःस्पृहाः ७४

दोहा ।

त्वं राजा राजा अहं, अधिक भेद कछु नाहिं ।
तुमुँ चतुर्विध चमू कर, करो गर्व मनमाहिं ॥ ४ ॥
मन बुधि चित्त अहं चतुर, सेना प्रबल प्रवीन ।
लब्ध गुरों की सेवकर, हमउन्नत इतपीन ॥ ५ ॥

बहुप्रकारकेधनो कर, तुम प्रसिद्ध जग माहिं ।
हम निजनिर्मल गुणों कर, प्रगटदशोंदिशि आहि॥६॥
बीच पुस्तकों कविजनों, गाये हमरे गीत ।
भो भूपति संसारमें, मैं प्रसिद्ध इति रीत ॥ ७ ॥
भूके कोटि बिभाग कर, कण लवांश तिहँ पाय ।
ताकर त्वं उन्नत भयो, रुचि विहीन दर्शाय ॥ ८ ॥
बोधनिजातम राजकर, हम गर्वत उरमाहि ।
नाहि करें हम चाहि तव, हे मानद नरनाह ॥ ९ ॥
ईश्वर अंश आतिथि लख, मानहान अघ होग ।
हमकर तुम इत त्रितयविध, मानदानके योग ॥१०॥

सोरठा ।

याचकादिकर भूप, मानदानके योग्य तुम ।
त्यों हमते तव रूप, होत न समता भावत ॥ ११ ॥

दोहा ।

किंचित तव मम सामता, बाह्यगुणों कर चीन ।
राजांतरमों अंतरों, हम अदीन तुम दीन ॥ १२ ॥
यथालाभ संतुष्ट हम, निजानंदमों लीन ।
इतउतके सुखसों आहित, याविधि अहं अदीन॥१३॥

सोरठा ।

मदन मदादि क्लेश, शोक लोक परलोकके ।
ताँकर दुखी हमेश, त्वं नरेश हैं दीन इम ॥ १४ ॥
जगजीवन दिन चार, तज मद स्वेच्छित संचरो ।
सभजन हरि अवतार, करो मित्रता सर्व सह॥ १५॥

दोहा।

गहे पाद योगीशके, नमो दंड इव कीन।
आयसु पाय स्वदेश नृप, गयो मुदित मदहीन॥१६॥
वचन नाथके धार उर, डार गर्व संताप।
भूप अभय विचरत भयो, वृथा न साधुमिलाप१७॥
अमृत वचनकी वृष्टिकर, कृपा दृष्टिके साथ।
गर्व ताप नरनाथको, हरयो नाथको नाथ॥ १८॥
श्रीहरिभरत यतीन्द्रपति, अमुक नरेन्द्रोवाच।
चिंतामणि समराज तज, कत दरिद्रमों रांच॥ १९॥
सम मुदिता निर्दीनता, निर्भय सहित विचार।
कीर्तिकरतदरिद्रकी, ता प्रति भरत उदार॥ २०॥

श्लोकः।

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं च लक्ष्म्या
सममिह परितोषो निर्विशेषो विशेषः॥स तु
भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला मनसि
च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः॥ ७५॥

चौपाई।

वल्कलकरहुलासहै हमको। बहुलक्ष्मीकरमोदसुतुमको॥
मैं प्रसन्न सक्तूशागादाहिं। त्वं प्रसीदबहुविंजनस्वादाहिं॥
वयंहर्षक्षितिशिलाशयनकर। यूयं तुष्टदुरदरदखटपर॥

१ तुमको संतोष है हाथीदांतके पायेके पलंगपर सोकर।

शांति त्रिया युत मम संतोषा। सुंदरनारिनकरतवपोषा॥
नृपतितृप्तितायोजनग्रामहिं।किंचिततारतम्यनहिंतामहिं।
पुनः दरिद्री भवतु वही नर।हृदय जाससुप्रकाश आशतर
भूपति चित्त प्रतुष्टे जबहीं। को धनवंत रंकको तबहीं॥
मो मन अब संतुष्ट भयोअति।नाहिं दरिद्री धनी निहारति
भेदभाव सगरो अब नाश्यो।एकब्रह्मउरमाहिं प्रकाश्यो॥
परमानंद ब्रह्म मैं जोरा। परमानंदभयोमनमोरा॥ २९॥
ब्रह्माकार भयो मन जाते। ब्रह्माकार लखे भव ताँते॥
तुम जु कह्यो नृपमोहिंदरिद्री। कवनयुक्तिइनमैंतुमअद्री॥
देखदिगंबरकाय विवर्णा। मोहिं दरिद्री तोहिं जु वर्णा॥
देकर तोते अधिकसमाजा। लियोदरिद्रमोलमेंराजा॥
जासप्रतापनिजातमशोधा। भयेनिरस्तसमस्तविरोधा॥
जास मया कर हे नर राई। मैं अब सिद्ध अवस्था पाई॥
अविलोको मैं लोकसवाया। मोहिनहेरतकोक्षितराया॥
द्विधा प्रकार दरिद्र बखाना। एकसतोमयतममयआना॥
मनकरतनकरभोगअसंग्रह। यहिवरिष्ठदारिद्रमोरगृह॥
हरिगुरुभक्तिकृपादित्यागजहँ। सोकनिष्ठदारिद्रतोरमहँ॥
चाहिआहिमनमाहिंजाहिंअति।सोपिदरिद्रीतुमवतनरपति
तुच्छ सदुःखविनाशीसंपत।पायवृथानृप त्वंकत गर्वत॥

दोहा।

मौन धरो निजभौनको, करौ गौन भूपाल।
तृष्णाचित्त विशाल जिहँ, वही परमकंगाल॥३२॥

ज्यों[1]रवि मास निशांतमैं, शांति अवश उत्पन्न ।
त्यों नृप उर धर भरतरव, भयो ज्ञान संपन्न ॥ ३३॥
अति वर्षा[2] जल भरतरव, नृप उर ऊषर गाय ।
ताँ युत[3] तिहँ वितजलजभव, गयो नमो कर राय ३४

दोहा ।

मम आयन पावन करो, पावन पावन पाय ।
वक्ता नृप वतराजनिज, निर्भय ताँ प्रतिगाय ॥३५॥

श्लोकः ।

अर्थानामीशिषे त्वं वयमपि च गिरामी-
श्महे यावदित्थं शूरस्त्वं वाग्मिदर्पज्वर-
शमनविधावक्षयं पाटवं नः ॥ सेवन्ते त्वां
धनान्धा मतिमलहतये मामपि श्रोतुकामाः
मय्यप्यास्था न चेत्तत्त्वयि मम सुतरामेष
राजन् गतोऽस्मि ॥ ७६ ॥

---

१ जैसे सूर्य्य समग्र राशिको भोगके मासकी अंतिम रात्रिके शेषमें शान्त होजाता है अर्थात् उस राशिके भोगसे उपराम होजाता है अथवा जैसे पूर्णमासीकी रात्रिके शेषमें चन्द्र प्रभावसे सूर्य शान्तसा उत्पन्न होता है वैसेही राजाभी भर्तृहरिके वचनोंके सांवदसे शान्त होगया । २ पृथिवी । ३ ताँयुत अर्थात् ऊषर युत होनेसे भी तिंह भरथ रवसे वित्त अर्थात् उत्पन्न होनेसे राजाकी हृदय भूमिमें ज्ञानरूप जलज अर्थात् कमल भव कहिये उत्पन्न हुआ तो नमो करके गया ।

कवित्त ।

विभवोंके ईश तुम वागमिंके ईश हम,
भूपति भगवान शूरवीर हम अति है ।
परप्राणी माहिं मद ताप तास नाशबेको,
अक्षै गिरा चल चतुराईको धराति हैं ॥
सैवतधनांधे तोकों पूजतहैं श्रोते मोकों,
मतिमलहत हेत लेत मोते मति हैं ।
रावरो हमारो राजगुणोंके समाज सम,
अंतरके राज मांहिं अंतरो महाति है ॥ ३६ ॥

टीका चौपाई ।

राजन तुम पृथिवी पति राजे।हम राजे त्रिभुवनके साजे॥
लाजें तुमरेधाम विराजें । देख दोषबहुताते भाजें ॥३७॥
बुद्धि वेलिक हरणें हारी । अंश तुमारी कठिन कुठारी ॥
छलद्मैल मूत्रादित्यागसम । तजेपदारथनाहिं ग्रहें हम ॥
हमनिषप्रेहीचरहिस्वतंतर । दुसह दुःखममसुख परतंतर॥
मैं आनंदीनिजानंदकर । विषय भोगसुखके तुम किंकर ॥
करो दंडतुमदुष्ट जनोंको।सहि न सकोंमैंदुःख सो तांको ॥
तुमडाटोतिहँमुक्तचहेहम । तवममसंगित तुल्यतेजतम ॥
महत राजवारेहमराजन । स्वल्पराज तवसोममकाजन ॥
तुमरे सदन सदौरेप पौरे । सहि न सकों मैं बायक कौरे॥

---

१ वमन । २ सहित द्वारपोंलोके तुम्हारे पौर कहिये दरेवाजे हैं ।

तवनिकेतइत्यादिकदूषण ।सोममयोग्य नभोभूभूषण ॥
नमोमात्र जो भूपतिहारी । हमताँकेभी नाहिं अधिकारी ॥
तव आलय तनपाले लाजें। जांते हम तुम दोनों राजें ॥
ताते हमरो तुमरे माहीं । है नृप अधिक अंतरोनाहीं ॥
राजान्तरमोंआहिविषमता ।बाह्यराजगुणकीकछुसमता ॥
असुरी संपत्केपतितुमहूँ । सुरी संपदाके प्रभु हमहूँ ॥
तुमस्वदेशके अर्थोंकेपति । रंकधनीकीकरोविषमगति ॥
हमवाणीपतिनिजवाणीकर। करंहितारतमतुमसमनरवर॥
निजप्रजारि[1]के अरि तुमवीरा । बलविख्यातरावरोवीरा ॥
निजविभागकेहरणेकाजा।रक्षकतुमलोकनकेराजा ॥४६॥
बाहिर धनके हरता तस्कर।ताके दण्डकतुम भूपतिवर॥
अरुतवमनदुषमनतव अंतर। तुमरेबलको हरत निरंतर ॥४७॥
ब्रह्म सच्चिदानंदरूपतव । ढापलियोतिहँयथाअभ्ररवि ॥
मृषाअचेतनदुःखरूपतन। अरुपरिणामीविपताबासन४८
तामैअहंभावतवकीनो । नखशिखाग्रलोनिजवपुचीनो ॥
अज असंगलो धर्म तुम्हारे चित्तशत्रुते ढापे सारे ॥४९॥
जन्म मरणलोतनके कर्मा । चीने तुम अपने पर धर्मा ॥
निजानंद ते तुमकोतोरे। नीच विषयसुखबीचसुजोरे ५०
कामक्रोधलोभादिरूपधारि । नटवतमोहेतुमकोमनआरि ॥
तुमरेसुखकोआहिनाशिकाटे ।सतपथतेतुमकोमितडाटे५१
कीनदीनतेदीनेतुमहिंमन । जन्मजन्मकोमनतवदुषमन ॥

---

१ अपनी प्रजाके शत्रु ।

तब आश्रयबलपायातिहारो । हऱ्योसर्वमनतेजतुमारो ॥
तुम्हरे बलको जब मनधारे । तबेशुभाशुभपंथ पधारे ॥
तवबलरितेकितेनसिधारे।जडस्वभावतेबाणप्रकारे ॥५३॥
जबलगितुमरोमनअरिजीता।तबलगलवसुखहोतनमीता ॥
जबतुमचित्तशत्रुनिजजीता । तबमोसमतुमचरोअभीता॥
मनरिपुजीतांसबरिपुजीते । मनरिपुजीतांसबरिपुजीते ॥
इतरतनोंमेंहोइनानिग्रह।मानसकोविनमानसविग्रहँ॥५५॥
ताते स्वांतरमनवशि कीजे। निर्भयपदशूरनको लीजे ॥
मदनमदादिशत्रुभक्ताके । हरंहिमोक्षसुखअरिहमताँके५६
वायकसायककरतेहहनके । समदमादिजनकेमनजनके ॥
त्रिधातापतेताकोराखहिं।तेनिजज्ञानपायभैनाखहिं। ५७॥
भूपपुनासमसूरशूरहम । गिराकिरणकरहरहिंजुभ्रमतम ॥
रागद्वेषकोमदज्वरभारी।ताकरजरतसर्वतनधारी॥ ५८ ॥
ममवचनौषधिकोजनजबहीं । संयमसंयुतसेवहिंकबहीं ॥
हेतुसमेतप्रहारतापसब । लहिंतनिरतशयानिजानंदतब५९
अरतृष्णाकरबौरेजे नर । गहे मान विनधनकणकाखर ॥
तनपोषतयोषितभोगार्थ।तेनलखहिंपशुवतपरमार्थी।६०॥
असपामरतवसेवतराजन । सेवहिं मोहिं मोक्षके भाजन ॥
निजमतिकीमलहतकेकाजा।सुनतेवचनसरुचिममराजा॥६१॥
अरसहकामीभोगानिमित्ता । अरचहिंमोहजबे इकचित्ता॥
प्रगटेजौंतिहँपुण्यविशेषा । तेपितजाहिंनिजनिखिलकलेशा ॥

१, २. जीवित। ३ जीतागया । ४ शरीर। ५ डारदेतेहैं ।

सुखपसुखेन शीघ्र बहुभोगा। करेगिराममताँजनयोगा॥
चपलचित्तमहिंवचनवसाहिमम। करहिंतिसेतबअचलअंचलसम॥
अचलनिजातमसुखभुक्तावत। भुक्ताचित्तअंचलतापावत॥
ब्रह्माकारभयोमनजाँते। भोग्यो गयो आप खलु ताँते॥
पूरबचपलरूपनिजखोयो। चितसोंमिलचितचितसोहोयो
चितचितनाम सजातीजाँते। भवतअभेदउभयाचिताँते॥
अचलनिजातमसुखकीदानी। ताँते अचलचतुरममबानी॥
जहाँ संचरेगिराहमारी। करेतिसेतबानिज अनुसारी॥६६॥
ताँते वाक्य हमारे राजन। जन श्रद्धालूके अति साजन॥
मम वचनोंपर तव श्रद्धा जब। धरोतबैडरतापहरोसब॥
सर्व जनोंके हितकी कीजे। निर्भय दान सकलको दीजे॥
यशकोतिलकधारजगजीजे। मानस देहसफलकरलीजे॥

दोहा।

हरहु दुखीके दुःखको, सुखियेको सुखदेह।
धरे शिरोमणिवचन मम, रमो नरो मणि गेह॥६९॥
मानहान भूपानको, कीन सप्तमेंऽध्याय।
अनुंज वृद्धभ्रातानके, धस्यो मध्यमोऽध्याय॥७०॥

दोहा।

अष्टे अष्ट श्लोक कर, नृपन गर्व संताप।
अमृतवचनचूरणसहित, चूरण कराहिं कलाप॥१॥

---

१ पर्वतके समान। २स्थिरता। ३अनुज अर्थात् सबसे छोटा केवल तीन श्लोकमात्र सातवां अध्याय अपने बडे २ भाइयोंके मध्यमें विराजमान हुआ॥

श्लोकः ।

विमलहृदयैर्धन्यैः कैश्चिज्जगज्जनितं पुरा
विधृतमपरैर्दत्तं चान्यैर्विजित्य तृणं यथा ॥
इह हि भुवनान्यन्ये धीराश्चतुर्दश भुञ्जते
कतिपयपुरस्वाम्ये पुंसां क एष मदज्वरः ७७

चौपाई ।

कछुकपुरनकोहोकरराजा । याँमदज्वरनरकरतअकाजा ॥
विमलचित्तजनकोचितधंने । पूर्वसुजगत जिनहुँनेजंने ॥
कमलासनतेआदिमहावर । गर्वकरहिंबनहैनकर्योपर ॥
जगत अनंतअनंत फणोंपै।धर्यो अनंत न गर्व कर्योपै ॥
परशुरामतेआदिप्रवीनो । जिनभवकोत्रिणवततजदीनो ॥
इंद्रादिकपुनअपरजुधीधर।याँजनलोकविखेअतिशयवर ॥
चौदशभुवनराजाकिलभुंजत । स्वपनेहूँमदज्वरनहिंरंजत॥
मन्दभाग्यजे आदिरंकनर । तेजडनवधनसुरापानकर ॥
बंध मुक्ति विधि लखे न अंधे । कनकबधूकेसुखमैं बंधे॥
अविनयवानपरमअभिमानी।व्याकुलइंद्रियबुद्धिविहानी ॥
किंचितसंपतपायदुष्टजन ।करहिंगर्वअतितुच्छकृपणमन
खानपानगृहवसननकेहित । चहोंखलोंतेमैंन कदाचित ॥
भिसवरकेभोजनकरहमअलं। अचन अर्थअलंमधुरगंगजल
शयनहेतममवसवसुधातल। चीरदिगंबरवल्कलकरअलं[3] ॥

---

१ तृप्त । २ पर्य्याप्त । ३ आनन्द ।

कछुपुरपतिअरनवधनपाए। अधिपतिधनपतिजेगर्वाए॥
ताँते याचनको दुख जोऊ। मैं न सहारसकों अब सोऊ॥

दोहा।

मुक्ति भुक्ति संयुक्त हर, भजों परण फल खाय।
पर न दुर्जनोंके घरन, देहि शब्द कहुँ जाय॥ १०॥

श्लोकः।

स्वादिष्ठं मधुनो घृतादिरसवत् या प्रस्रवत्यक्षरं देवी वागमृतात्मनो रसवतस्तेनैव तृप्ता वयम्॥ कुक्षौ यावदमी भवन्ति धृतये भिक्षाहृताः सक्तवः तावद्दास्यकृताजैनैर्न हि धनैर्भोगान् समीहामहे॥ ७८॥

चौपाई।

फलफूलादिशाकसतवाबर। यहिजोल्यावेंहमभिक्षाकर॥
अचवों तिहँ सुरसरिजलपीके। शांतकरोंजठरागनिनीके
ताप चित्तको हरेजापहर। लहोंनिजातमसाधुसंगकर॥
सुधास्वरूप ब्रह्म वितवेदी। चिद्जड़ ग्रंथिसमूलप्रभेदी॥
वाणी जाहिं भवानीकेसम। स्रवति सुधांकअहंब्रह्मासम॥
सर्वगिराते उत्तम वानी। जाँके गहे सर्व दुख हानी॥
मधुतेक्षीरखांड घृतरसज्यों। स्वादुवंतअतिसंतशब्दत्यों॥
गिरातिनहुँकीश्रवणमननकर। तृप्तभवतममचित्त निरंतर
जबलगइममसतगुणवरतन।तबलगधनाहितभजोंनभूपन

भ्रुकुटीनैनबैन मुखउरकर । भ्रमत सर्वदाद्रव्य गर्व कर ॥
शिश्नोदर पर धर्म विहीनें । पथ परमार्थ परार्थ न चीनें ॥
ताँ पदातिहै ताँते वित्ता । करो न संग्रह भोग निमित्ता ॥
ताँहिंपामरोंतेजनपामर । चाहितद्रवणाहिं सहित अनादर ॥
मणीफणीकेशिरकीजैसे । जो जाचे सोबाचे कैसे ॥ १७ ॥
विषयभोगकेहितवांछेवित । धनकेहेतधनाढहिं बांछत ॥
ताँते विषय मोह मैं छोरा । धनधनाढ्यसोंकाम न मोरा ॥

दोहा ।

तन रक्षा भिक्षा करे, गुरुशिक्षा उरपोष ।
भोग भूप धनमोक्ष रिपु, मोक्षकरे हितमोक्ष ॥ १९ ॥

श्लोकः ।

दुराराध्यः स्वामी तुरगचलचित्ताः क्षिति-
भुजो वयं च स्थूलेच्छा महति च पदे बद्ध-
मनसः ॥ जरा देहं मृत्युर्हरति सकलं
जीवितमिदं सखे नान्यच्छ्रेयो जगति
विदुषोऽन्यत्र तपसः ॥ ७९ ॥

कवित्त ।

तजे दुराराध्यस्वामी कृपण कुमग गामी,
वाजिवत चलचित्त भूपनके मानिये ।
ताते में सथूल चाहिपुरी होति नाहिं ताते,
लायोमनताहि माहिपद जो महानिये ॥

जराहरे कायहरे कालक्षमुदाय प्राण,
तातें तप करो सखे विदुषों बखानिये ।
तप विना आन मग श्रेयको न मध्यजग,
तप नाम चित्तकी एकाग्रताको जानिये ॥ २० ॥

श्लोकः ।

पुरा विद्वत्तासीदुपशमवतां क्लेशहतये गता
कालेनासौ विषयसुखसिद्ध्यै विषयिणाम्॥
इदानीं सम्प्रेक्ष्य क्षितितलभुजः शास्त्रवि-
मुखान् अहो कष्टं सापि प्रतिदिनमधोऽधः
प्रविशति ॥ ८० ॥

सवैया ।

श्रुतिबोधविरोधनिवारणकारणप्राकहुतोसुसखासजनाँको ।
कछुकालगयेरसिआनदयेसुखभोगकिलाभनिमित्तधनाँको।
अतिखेदसुविद्याअविद्याभईअबमोक्षनभोगजनेंपुरुषाँको॥
प्रतिवासरजात अधेति अधेखलवेदाविरुद्धविलोकनृपाँको।

चौपाई ।

पुरामातवतथी विद्वत्ता । पुरुषोंके कल्याण निमित्ता ॥
सुजनोपढेमुक्तिहितबेदा । तिनहु जन्यो तिन उरनिर्वेदा ॥
स्वारथसिद्धारथवैरागाहिं । जन्योंविवेकसखातिहँजागाहिं ॥
युगलसखेमिलहयोंयुगमभ्रम। ज्योंरविहगतमहरतविनाश्रम
शास्त्रज्ञानइमबंधनहर्ता । पूर्वसुभयो मुक्तिको कर्ता ॥

किंचितकालवितीतभयोजब।वहीबोधजनमुग्धनकोतब ॥
विषयसुखहुँकेसिद्धिनिमित्ता।होतभयो क्रमकरततवित्ता ॥
तिनोंजनोंजबतन्त्रअधीते । करतभयेनृपश्रवणसप्रीते ॥
गुरगोविप्रनिदरसनमाहीं । त्रिधाअनन्यभक्तिउरजाहीं ॥
धर्मीसतबादीमनदाया । शुभगुणमंदिरअसनरराया ॥
ताँतेआमनायसुणसादर । देतद्रव्यबहुज्योंजलबादर ॥
इमभोगनकोकारणहोई । अहो खेद अबविद्या सोई ॥
दिनदिनअधेअधेकोधावे । मुक्तिभुक्तिनाहिंउभयउपावै ॥
यामेअवरनकारणकोऊ । क्षितितलभुक्ता नृप गणहोऊ ॥
कृपणअभक्तमुग्धअतिपापी । दुर्मगगामीमृषाअलापी ॥
शास्त्रोंमाहिंनाहिंरतिराई । अगुणअयशनिधिअसनरराई ॥
सोअबविद्यादेखतिनोंको । नाहिभुक्तभीदेतजनोंको ॥
श्रवणकरतनाहिंपठतनआपहिं।कबहूँकहूँपुण्यपरतापहिं ३०
किंचितकथासमागमबनहै । सुनत अरुचिनाहिंतामेंमनहै ॥
चित्तभ्रमतभवअर्थनमाहीं । कथाअर्थकछुबूझतनाहीं ३१
अरश्रद्धाविनजबकछुदवीहिं।देहिंताहिकोतबअतिगर्वीहिं ॥
वक्ताकोअनुचरवतजाने । तातेकरतनअतिसनमाने ॥३२
अरवक्ताकीइच्छा जोहै । ताते तृप्त कदापि न हो है ॥
तातेजोबुधिमानअहेजन । भूपनभवनेगवनकरेजिन॥३३

दोहा ।

निर्दूषण भूषण महा, रूखन सेवहि सोय ।
तबे तनय विद्या जने, भुक्त मुक्त शुभदोय ॥ ३४ ॥

सोरठा।

विद्या वधूप्रसूत, शांतिधुनी भूमेऽभवत।
जने प्रबोधसुपूत, हने कलेश अशेष तब ॥ ३५ ॥

श्लोकः।

अभुक्तायां यस्यां क्षणमपि न यातं नृपशतैर्भुवस्तस्या लाभे क इह बहुमानः क्षितिभुजाम् ॥ तदंशस्याप्यंशे तदवयवलेशेऽपि पतयो विषादे कर्त्तव्ये विदधति जडाः प्रत्युत मुदम् ॥ ८१ ॥

दोहा।

भयोगर्व बहु नृपनको, वरणों किं सम सोय।
केवल वृथा निमित्तबिन, जडता सूचक होय ॥ ३६ ॥
भई अभुक्त न निमष अपि, भूप गयो कर गाय।
चगल सगल भूपानकी, ताहि पाय गर्वाय ॥ ३७ ॥
तास अंश पुन अंशतिहँ, ताँ अवयव लव लेश।
तिहँ उच्छिष्टकै पति भये, गर्वहि हम दुहनेश ॥ ३८ ॥
गनका समाक्षितबहुपती, पुनः सर्वकी जूठ ॥
ताहि भोग कर भूपसठ, मुदिता धरें अनूठ ॥ ३९ ॥
परम निंद यहि कर्म कर, पश्चात्ताप करे न ॥
उलटे मदमुदिता धरे, धिक पुरुषाधम तेन ॥ ४० ॥
पुन धिक धिक तिन नरनको, तिने घरन जे भाग ॥
नमोकरन तन भरण हित, शरण विश्वंभर त्याग ॥ ४१ ॥

श्लोकः ।

गङ्गातरङ्गकणशीकरशीतलानि
विद्याधराध्युषितचारुशिलातलानि ॥
स्थानानि किं हिमवतः प्रलयं गतानि
यत्सावमानपरपिण्डरता मनुष्याः ॥८२॥

सवैया ।

शुचिगंगतरंगकीबूँदकणीकरशीतलचारुहिमांचलकीशिल ॥
जिहफूलफलादिउपानधरैशिवको नितसेवत देववधूमिल ॥
परभोजनमें निज जोजनदे दिलतागिरिकोकतकाल लयोगिल ॥
अपमानसहीअपमानसहीविदधीरसहीनृपधामअही बिल।

श्लोकः ।

फलं स्वेच्छालभ्यं प्रतिवनमखेदं क्षिति-
रुहां पयः स्थाने स्थाने शिशिरमधुरं पुण्य-
सरिताम् ॥ मृदुस्पर्शा शय्या सुललित-
लता पल्लवमयी सहन्ते सन्तापं तदपि
धनिनां द्वारि कृपणाः ॥ ८३ ॥

सवैया ।

प्रतिकाननवृच्छनतेमनवांछितलाभसुखेन फलादि अपारा ॥
सरिताकिसथानसथान विखशुचिसीतलमिष्ट मिले बहुवारा ॥

---

१ अपमानसे अर्थात् नीच पुरुषही अपमानको सहारताहै और विद अर्थात् विद्वान् धीर पुरुषको राजालोगोंके घर सर्पोंकी बिलों जैसे दीखतेहैं ।

जलपत्रवतीमृदुसापरशीतल पादिकेहोवत भूपनद्वारा ॥
सटकेमतिमानमहाभटकेमतितिमानतहांकतहोवतख्वारा ॥

श्लोकः।

किं कन्दाः कन्दरेभ्यः प्रलयमुपगता
निर्झरा वा गिरिभ्यः प्रध्वस्ता वा तरुभ्यः
सरसफलभृतो वल्कलिन्यश्च शाखाः ॥
वीक्ष्यन्ते यन्मुखानि प्रसभमपगतप्रश्र-
याणां खलानां दुःखोपात्तालपवित्तस्मय-
पवनवशान्नर्त्तितभ्रूलतानि ॥ ८४ ॥

कवित्त।

कंदराते कंद मूल कहा निरमूल भयो,
वारी वारे नग किधौं देतहै न वनको।
मीठे फलों वारी डारी तरोंकी न फल देहिं;
कैधों द्रुम देत हैं न बलकल जनको ॥
दुःखसों मनाक धन साध्यके मदांध भये,
मदव्यार साध जो भ्रमावे भ्रूलतनको।

१ जलवत् शीतल कोमल तथा निर्मल पत्रोंवाली मृदु कोमल स्पर्शवाली तल्प अर्थात् शय्यादिके होतेभी राजाओंके द्वार पर (सटके) अर्थात् डारके अपने मति और मानको महा भटकताहै वह मूर्ख पुरुष जिसको अपनी मतिमें मा अर्थात् ममत्व नहीं है परन्तु बुद्धिमान् वहां हैरान कैसे होसकता है अर्थात् कभी नहीं। २ जल।

खलोंके कुमुखोंको सबल सो पुरुष पेखे,
अहो कैसे तजे ऐसे बन चिंतामणिको ॥ ४४ ॥

श्लोकः ।

मृत्पिण्डो जलरेखया वलयितः सर्वोऽप्ययं
नन्वणुस्तं स्वीकृत्य सदैव संयुगशतैराज्ञां
गणा भुञ्जते ॥ ते दद्युर्ददतेऽथवा न किमपि
क्षुद्रा दरिद्रा भृशं धिग्धिक्तान् पुरुषाधमान्
धनकणं वाञ्छन्ति तेभ्योऽपि ये ॥ ८५ ॥

दोहा ।

वल्यो जलधि जलरेख कर, यहिक्षिति मृतिकापिंड ॥
भोगत ताको भूपगण, कर बहु समर प्रचंड ॥ ४५ ॥
खंड खंड कर अरिनके, पिंडशरणके संग ॥
वंड वंड कर धरणि सब, भोगत भूप उमंग ॥ ४६ ॥
द्रव्य गर्वकर अंध मन, कृपण दरिद्री क्षुद्र ।
कुटिल कुमग गामी अधम, कामी दुःख समुद्र ॥ ४७ ॥
तजके मति निजमानको, जे मतिमान पुमान ।
धनकाकनकावाँछते, ताँते धिक धिकतान ॥ ४८ ॥
सूमधनी धनकी कनी, देहिं किधों नाहिं देहिं ।
बुद्धिमानकी बुद्धिको, मानसहित हरि लेहिं ॥ ४९ ॥
दाम मात्र न ददामि धन, कराहिं निंद अपमान ।
पुरुष प्रतिष्ठा मानको, जीवन मृत्यु समान ॥ ५० ॥

हरके वरके भोगको, त्रिपतहिं नृपन निकेतु।
भोग प्रेत कर इमग्रसे, शशी राहु रविकेतु ॥ ५१ ॥
संचित अर्थ अनर्थकारि, भोगत साधु जु तास।
लेतपाप सभ आपतिहँ, देत पुण्यानिज राशि ॥ ५२ ॥
भूपन सम भूपानके, भोगत भोग जु साधु।
सो तद्वत दुर्गति गहे, शमदमादि कर बाध ॥ ५३ ॥
इत निंदा उत मंद गति, तास भ्रष्ट बिब लोक।
ज्वरवतको घृतवतहते, शुभको नृपको ओक ॥ ५४ ॥

सोरठा।

दुग्ध साधु मनमांहि, राज अंश कांजी मिले।
युगुल शीघ्र फटजांहि, गहे मुमोक्षू नाहिं तिहँ ॥ ५५ ॥

दोहा।

दुहे साधुधीधेनुका, दुग्ध सुकृत समूह।
अर्प भोग घासादि तिहिं, भूपगोप विधिऊह ॥ ५६ ॥
बहुभोगों कर पुष्ट तन, तन पुष्टे मनपुष्ट।
मनपुष्टेमद मदन लौ, पुष्ट होत रिपु दुष्ट ॥ ५७ ॥
जन विरक्तको भूप जन, बहुत भुगावे भोग ॥
नातर साधु असाधुहै, पाप भूपको होग ॥ ५८ ॥
मलिन अन्न कर मलिन मन, शुद्ध अन्न कर शुद्धि।
जलवतचित जासों मिलै, भवत तथा विधिबुद्धि ॥ ५९
वर धनाढ्य सत भाव कर, यजे संतको जोय।
गंगोदकके पान सम, तृषा कुगति हत दोय ॥ ६० ॥

सोरठा ।

तात यथाधिकार, यजे साधुको भूप वर ॥
नातर तिने धिकार, देत लेत जु विचार विन ॥६१॥
नृप धन धनुते धीर, शरके सम सरके झटति ॥
पोखेंचित्त शरीर, हरिभज भिक्षा अन्न कर ॥ ६२ ॥

दोहा ।

भयो भरत वैराग्यको, अलं अष्टमोऽध्याय ।
धर्म विमुख भूपानको, निंद्यो तास मिलाय ॥ ६३ ॥

दोहा ।

नवमें रवि वृत कर कहें, दशा प्राक विदमान ।
सिमर सिमर गतदिननको, हसत समाधि उथान॥१॥

श्लोकः ।

ये वर्धन्ते धनपतिपुरः प्रार्थनादुःखभाजो
ये चाज्ञत्वं दधति विषयाक्षेपपर्यस्तबुद्धेः ॥
तेषामन्तः स्फुरितहसितं वासराणां स्मरेयं ध्यानच्छेदे शिखरिकुहरग्रावशय्यानिषण्णः ॥ ८६ ॥

कवित्त ।

गुफाके पखानपै समाधिते उत्थान पाय,
ब्रह्मध्यान सुखको मैं ध्यानकीनों अंहिसे ।

---

१ स्वाभाविक ही ।

बीतेजे दिहारे दुखवारे ताँसमारहँसो,
दुष्टधनी द्वारे जे भ्रमान वारे अहिसे ॥
दुःख जडताके हेतु याचना निकेत जे थे
भोग लाभके समेत मद देत अहिसे ।
जेई भोरी[३] मत्त हते अब बहि अहि मते,
अहँ बीतें अहिमोर वहि अहिअहिसे ॥ २ ॥

श्लोकः ।

यदासीदज्ञानं स्मरतिमिरसंस्कारजनितं
तदा दृष्टं नारीमयमिदमशेषं जगदपि ॥
इदानीमस्माकं पटुतरविवेकाञ्जनजुषां
समीभूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि ब्रह्म तनुते ८७॥

झूलना ।

भोगसंयोगकर दुष्टअज्ञान अरिमोरउरमांहिभयोपुष्टभाना॥
समरके तिमरमैं संसकारोपजेसारसंसारकोनारिजाना ॥
बुद्धिकेनैनमो ज्ञानअंजनदियोपादत्रैनैनके सव्यमाना ॥
भयोअबचतुरमैंलोकदशचतुरमैंब्रह्मकोवेदकरभेदहाना ॥

---

१ थे । २ भोगलाभके कालमें उन दिनोंमें मेरेको अहि अर्थात् सर्प जैसा मद होजाता था अर्थात् कामके लाभ होनेसे क्रोधरूपी मद सर्पकी तरह पैदा होजाताथा । ३ और अबतो जो मेरी बुद्धिका नाश किया करतेथे वे दिन चले गये और वर्तमानमें बीतने वाले मेरे दिन तो मयूरके समान हैं और बीत चुके हैं वे सर्पों जैसे थे अर्थात् उन सर्पोंको वर्तमान मयूर निगल गये हैं ।

श्लोकः ।

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः सम-
भवं तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम
मनः॥यदा किञ्चित् किञ्चिद् बुधजनसका-
शादवगतं तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव
मदो मे व्यपगतः ॥ ८८ ॥

कवित्त ।

चीनों जबाकिंचित करिंद यों मदांध भयो,
तबी मोहिं जानलीनो सबीं ज्ञाता आपको ।
तास मदतापके प्रताप कर मोरे मन,
माहिं कछु रह्यो नाहिं ज्ञान पुण्यपापको ॥
स्वच्छ सतसंग कीनो तब कछु कछु चीना,
मूढ जानो आपको विहानो मद तापको ।
साधुनको मेलाचारु मेलेचारुसाधनको,
जाहिंके प्रतापकर पायो मैं निजापको ॥ ४ ॥

श्लोकः ।

इयं बाला मां प्रत्यनवरतमिन्दीवरदल-
प्रभाचोरं चक्षुः क्षिपति किमभिप्रेतमनया॥
गतो मोहोऽस्माकं स्मरकुसुमबाणव्याति-

---

१ साधुपुरुषोंका मेला चारु अर्थात् उत्तम होता है क्योंकि ज्ञानके वैराग्यादि चारों साधनोंको मेल देता है ।

करज्ज्वलज्ज्वालाशान्ता तदपि न वराकी विरमति ॥ ८९ ॥

वृद्ध नराच छन्द।

सप्रीति नीच नारिए सदीवमें निहारहै।
सरोज नील पत्रकांत चोरचक्षु डार है॥
इने अलक्ष भावको लखो चुँरात चित्तमों।
रचोरनैनसानमें स्वभावको निहार है॥
भयो विशुद्ध मोहि चित्त मोहको निमित्तनाहिं।
मैन फूल वानकी कृशानुको प्रहार है॥
अजेपिएछिनार नारि नारको न फेरहै।
तियाक्षस्यालतनमेर चित्त शेरहारहै॥ ५॥

दोहा।

नांहिंमेरुमनमेरको, दृगपंतपरझूल।
चपलसकेकरअज्ञके, चित्ततूलके तूल॥ ६॥

श्लोकः।

रे कन्दर्प करं कदर्थयसि किं कोदण्डटङ्कारवैः रे रे कोकिल कोमलैः कलरवैः किं त्वं वृथा जल्पसि॥ मुग्धे स्निग्धविदग्धमुग्ध-

१ मेरे मनरूपी मेरु पर्वतको स्त्रीके नेत्ररूपी पतंगोंके पडनेसे झूल (चंचलता) नहीं होती किन्तु जिन अज्ञानी पुरुषोंके चित्ततूल (रुई) के तुल्य हलके हैं उनहींको वह पतङ्ग चपल करसकताहै।

मधुरैर्लोलैः कटाक्षैरलं चेतश्चुम्बितचन्द्र-
चूडचरणध्यानामृतं वर्तते ॥ ९० ॥

कवित्त ।

रे रे मीनकेतु किं कसीस देत पानको,
कमानके टंकार ध्वनो सों नमन त्रसहै ।
अरी मूढ पिक काको मृदु चारु वचनाँको,
वृथा बकें न असाँको ताँको कछु रस है ॥
मुगधे सनिगध विदगध मुगधलोल,
मधुर कटाक्षों तेरे करमोंको बस है ।
चंद्र चूडामणि जाँके चुमे चित पाँउ ताँके,
बीच अमीध्यानवाँके मेरो मन वसहै ॥ ७ ॥

दोहा ।

तव पदाति थो भ्रांति मों, भ्रम्यों गेंद कपिसान ॥
चित्तशाँत गत भ्रांति अब, मैं प्रभु अनुग भवान॥८॥

श्लोकः ।

महेश्वरे वा जगतामधीश्वरे जनार्दने वा
जगदन्तरात्मनि ॥ न वस्तुभेदप्रतिपत्ति-
रस्ति मे तथापि भक्तिस्तरुणेन्दुशेखरे॥९१॥

चौपाई ।

स्थावरजंगमसभजगताके । ईश्वरपरमनाथगिरिजाके ॥
अरश्रीविष्णुदेवकेमाहीं । जाँमाहिं कछू विषमता नाहीं ९

१ हे प्रभो शंकर ! मैं अब आपका अनुग अर्थात् अनुसरण करताहूं ।

सर्वात्मा सबजगके अंतर । व्यापरह्यो समएकनिरंतर ॥
पुनःउमाधवमाधवदोमाहिं । भेदवतीमतिमोमहिंसोनाहिं ॥
तदपिसुममभक्तीमधताँके । तरुणशशांकशेखरेजाँके ॥
भेदेभेदजासकरुणाते । ममअतिभाक्तितासमैंताँते ॥११॥

श्लोकः ।

मातर्मेदिनितात मारुतसखे तेजः सुबन्धो जल भ्रातर्व्योम निबद्ध एष भवतामन्त्यप्रणामाञ्जलिः ॥ युष्मत्सङ्गवशोपजातसुकृतोद्रेकस्फुरन्निर्मलज्ञानापास्तसमस्तमाहमहिमा लीये परब्रह्मणि ॥ १२ ॥

छप्पय ।

वसुधा मात कं बंधबंधुशुभहे सखि आंगे ॥
तात वात वरभ्रात गगन मैं तुमसब आगे ॥
एह अंतकी नमो जोरकर करों सदीने ॥
तुमरे संगप्रताप सुकृतमैं सर्वजुकीने ॥
तिनज्ञान भानु निर्मल कयों हान महा तममोहसब ॥
मैं लीन भयो परब्रह्ममैं तुमसों रह्यो न काम अब॥१२॥

श्लोकः ।

मातर्लक्ष्मि भजस्व कंचिदपरं मत्कांक्षिणी मास्म भूर्भोगेभ्यः स्पृहयालवो नहि वयं

१ क–जल । २ हे अग्निरूप सखे ।

का निस्पृहाणामसि ॥ सद्यः पूतपलाश-
पत्रपुटके पात्रे पवित्रीकृते भिक्षासक्तुभिरेव
सम्प्रति वयं वृत्तिं समीहामहे ॥ ९३ ॥

नील छंद ।

मो तज मात रमा अब तू भज आन किसे ।
जे तव भोगन हेत भजें तुम सेबि तसे ॥
मैं न चहों भवभोग कहा तुम मोहि भजें ।
लागतकी निसप्रेहनकी चहिती न लजें ॥ १३ ॥
पत्र पवित्र पलाशके नौवन ते हरकें ।
सुंदर ताँपुटका कर मैं करमैं धरके ॥
भीखपवित्र पवित्रघरे सत बादि गहों ।
गंगकि पाथ कि साथ भखों कुखि दाह दहों ॥ १४ ॥

सोरठा ।

हम योगी निहकाम, प्राणधरें इम हर भजें ॥
तुमसों रह्यो न काम, रमो रमा भोगी जहाँ ॥ १५ ॥

श्लोकः ।

यूयं वयं वयं यूयमित्यासीन्मतिरावयोः ॥
किं जातमधुना येन यूयं यूयं वयं वयम् ९४॥

कवित्त ।

पूरबले दिनों विखे तेरी मेरी प्रीति सखे,
ऐसे होति भई तुम हम हम तुम हैं ।
एकठो विहार शैन बैसनो आहारहुतो,

अब कहा भयो तुम तुम हम हम हैं।
ताते तबे परे जल लवजलजातसोऊ,
जलजातपरेटरे तूं मैं ताँके सम हैं।
आदि निर[2]भेदवति मतिनिर[3]वेद हती,
तोरा मोह तोरा मोहि ताँते उपरम है॥ १६॥

श्लोकः।

अशीमहि वयं भिक्षामाशावासो वशीमहि॥ शयीमहि महीपृष्ठे कुर्वीमहि किमीश्वरैः॥ ९५॥

तोटक छन्द।

हम भोजनभीखकुअन्नकरें। दिगचारकेअंबरचारधरें॥
कलँभूतलपै सुखसंगसमें। कछुकाजनराजनसाथहमें॥

श्लोकः।

न नटा न विटा न गायना न परद्रोहनिबद्धबुद्धयः॥ नृपसद्मनि नाम के वयं स्तनभारानमिता न योषितः॥ ९६॥

तोटक छन्द।

नटभाटविटाभटगीतकना। परद्रोहविखेहमप्रीतिकना॥
कुचभारनिमीललनानहमें। नृपधामसखेकितकामरमें॥

---

१ तू जलबिंदुवत् है और मैं तप्तलोहवत् हूं अथवा मैं कमलपत्रवत् निर्लेप हूं। २ परस्पर अभेदवाली। ३ वैराग्यने विनाश करी। ४ स्वच्छ।

श्लोकः ।

यदेतत्स्वाच्छन्द्यं विहरणमकार्पण्यमशनं
सहायैः संवासः श्रुतमुपशमैकव्रतफलम् ॥
मनो मन्दस्पन्दं बहिरपि चिरस्यापि विमृ-
शन् न जाने कस्यैषा परिणतिरुदारस्य
तपसः ॥ ९७ ॥

कवित्त ।

स्वच्छ व्यवहार विना दीनता अहार बनाँ,
सदाचार वार जनाँ बीच बास लयो है ।
वेदाध्येन ब्रह्म हक शांत फल लाभ इक,
मन्द मन्द मनको संपद दरशायो है ॥
ऐसे गुणोंसों संपन्न भयो अब मेरो मन,
को उदार पुण्य जिन ऐसो फलां दयो है ।
चिर रातों मांहिं शोधा नाँहिं हम ताँहिं बोधा,
तपतोनकोऊकियो हरयालभयो है ॥ १९ ॥

दोहा ।

भरतशतक वैरागको, अलं नवम अध्याय ।
ताँमैं अनुभव भरतको, गायो कवि सत भाय २० ॥

दोहा ।

करुणाकर दशमे भने, साधारण उपदेश ।
नवश्लोक कर जनोंके, हने कलेश अशेष ॥ १ ॥

श्लोकः।

न संसारोत्पन्नं चरितमनुपश्यामि कुशलं विपाकः पुण्यानां जनयति भयं मे विमृशतः॥ महद्भिः पुण्यौघैश्चिरपरिगृहीताश्च विषया महान्तो जायन्ते व्यसनमिव दातुं विषयिणाम्॥ ९८॥

नराच छंद।

विचित्र ए चरित्र जो भयोतपन्न लोकमैं।
मनाक मात्र क्षेमरूप तास ना विलोकमैं॥
विपाक पुण्य पुंजको विचारहों अहं जबे।
वही कनंत भीतिको जनंत हैं सही तबे॥ २॥
महाँन पुण्य वृंदको कलेश धार जो करे।
महाँन भोगनारिलौ वसें तबें चिरंघरे॥
वरिष्ठमान भोगते सराग सो भुगंत है।
लखे न जंतु कालको जु कौन काल हंत है॥ ३॥
विखे पुमान दो विषे अवश्य एक तोटरे।
चले प्रतंत्र भोग जे अनंत रोगको धरे॥
जनाप जो तजे इनें भजे निजापको तबे।
मतो समष्टको अमून होत अन्यथा कबे॥ ४॥
निकाम मोक्षको करें सकाम ते जमें मरे।
अहो सकाम काममों तथापि मूढ संचरे॥

लखे सकाम काममों ततज्ञ अग्निके समा ।
हहा कहा वृथा वितै सुअज्ञ ताहिं मों समा ॥ ५ ॥

दोहा ।

मुक्ति हेतु निहकाम है, भक्त देत सहकाम ।
केवल दुःख निमित्त है, तजो जनो अपकाम ॥ ६ ॥

श्लोकः ।

आयुः कल्लोललोलं कतिपयदिवसस्था-
यिनी यौवनश्रीरर्थाः सङ्कल्पकल्पा घन-
समयतडिद्विभ्रमाभोगपूगाः ॥ कण्ठाश्ले-
षोपगूढं तदपि च न चिरं यत्प्रियाभिः
प्रणीतं ब्रह्मण्यासक्तचित्ता भवत भवभया-
म्भोधिपारं तरीतुम् ॥ ९९ ॥

कवित्त ।

सलिल कलोल तुल्य आयुषा चपल कुल,
यौवनकी द्युति पल कछु इसथित है ।
चलचित्तके समान भाव सब हानवान ॥
घटाविखे छटावत भोग मल इति है ॥
कंठमों आलिंगना महानपीन अंगनाको,
ताँते जो आनंद नाहिं चिरसो रहित है ।
नरकाय पाय नरो स्वसरूप चित करो,
भवभयसिंधु तरो पुण्यसमो वितहै ॥ ७ ॥

श्लोकः।

यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता याव-त्क्षयो नायुषः ॥ आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान् सन्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥ १०० ॥

सवैया।

निजदेहअरोगसभोगलखोनपिखो जबतीक समीपजरा ॥
गुणमोंशकती जबलौनगती दरशोनहतीजुसबी उमरा ॥
निज श्रेयनिमित्त अमित्तकरो पुरुषारथको सुनरों उचरा॥
जरते गृह कारण कूप खने बहुउद्यमतो अँध कूप परा ८

श्लोकः।

कृच्छ्रेणामेध्यमध्ये नियमिततनुभिः स्थी-यते गर्भमध्ये कान्ताविश्लेषदुःखव्यति-करविषमे यौवने विप्रयोगः ॥ नारीणाम-प्यवज्ञा विलसति नियतं वृद्धभावोप्यसाधुः संसारे रे मनुष्या वदत यदि सुखं स्वल्प-मप्यस्ति किञ्चित् ॥ १०१ ॥

अर्ध नराच छन्द।

अमेध्य कुक्षिमें महाँ। रुकंत काय सो तहाँ।
विराजमान होय है। महान कष्ट जोय है॥ ९॥

जबै प्रसूत वायुते । स दुःख बाहिरावते ।
कृमादि गंदग्यादिते । सहे महाविषादते ॥ १० ॥
प्रहार मात तातकी । सहे सखादि भ्रातकी ।
शिशादि मों अनंतही । सहे कलेश जंतुही ॥ ११ ॥
पुना युवा विखे जबे । त्रिया वियोग है कबे ।
अनंत कष्ट जोय है । सहे न जात सोय है ॥ १२ ॥
पुनाबलादिमैंदशे । निरादरादियों ग्रसे ।
अवाच्य दुःख गावहै । असाधु वृद्ध भाव है ॥ १३ ॥

चौपाई ।

तीन अवस्था तीन कालमें।नहिं अवलोकत सुखकतहूँमें ॥
अज चीटीते ले भव जेतो । सर्व दुःख करसंयुत तेतो १४
सुखस्वरूपहै एक निजातम।इतर दुःखमयसर्व अनातम ॥
ताँसुखऋतेकितेसुखजोलव।तौतुमभनोंजनों निज अनुभव
जो तुमसुखके प्रापति कारण।सहोदुःखतेदुखतर दारुण ॥
मरणप्रयंतकष्टअतिपावो । सुखीस्वसुखतेकबीनगावो १६

दोहा ।

जेते सुख सत लोकलौ, तेते देत कलेश ।
आतम सुखते ऋते सुख, किते नहीं लवलेश ॥१७॥

श्लोकः ।

भोगा मेघवितानमध्यविलसत्सौदामिनी-
चञ्चला आयुर्वायुविघट्टिताभ्रपटलीलीना-
म्बुवद्भङ्गुरम् ॥ लोला यौवनलालना तनु-

भृतामित्याकलय्य द्रुतं योगे धैर्यसमाधि-
सिद्धिसुलभे बुद्धिं विदध्वं बुधाः ॥ १०२ ॥

नील छंद।

मेघ वितान समान विषे चपला चल ज्यों।
है शबदादिक भोग सबे अति चंचल त्यों ॥
संघट वारिद वृंद विषे जल वायु हरे।
काल तथा सब जीवनकी हत आयु करे ॥ १८ ॥
भोगन काज लडावत योजन यौवनको।
लोलकलोल समान स्वभाव लखो तिनको ॥
विश्व समस्त विनश्वर शोध तुरंत नरो।
योगविषे निज चित्त अरोपण नित्य करो ॥ १९ ॥

दोहा।

धीरज करके सिद्धजो, सुभग समाधि तुरंत।
ताँमहिं अरपो मन जनो, पुनर्जन्म है अंत ॥ २० ॥

श्लोकः।

भोगा भङ्गुरवृत्तयो बहुविधास्तैरेव चायं
भवस्तत्कस्यैव कृते परिभ्रमत रे लोकाः
कृतं चेष्टितैः ॥ आशापाशशतोपशान्ति-
विशदं चेतः समाधीयतां कामोच्छित्ति-
वशे स्वधामनि यदि श्रद्धेयमस्मद्वचः १०३॥

चौपाई।

विषय भोग जे अनिक प्रकारे। दुखदसरोग विनश्वरसारे ॥

एततही भवरूप निहारो । विना भोग संसार असारो ॥
उतकत हेत जगतकृत अंतर । कीटकपिन वतभ्रमतनिरंतर ॥
रे लोकोअविलोको नाहीं । शिरपरकाल बाणकरमाहीं ॥
क्षणमहिं प्राण हान कर डारे । बली अक्षमी दयानधारे ॥
तुमनिशिदिनअघओघकमाते। बलअबलादिस्वादुमदमाते ॥
जानोमनमोंमरणोंसाचो । तबकत हेतवृथाभवराचो ॥
भाँतिभाँतिभवचेष्टाकरकोलहोकदाचितशांतनमरते २४
ममवचननमहिंतवश्रद्धाजब।दुस्संकलपविकलपतजौतब ।
आशापाशबहुतविधिकीजे। तासनिवासनउरमहिंदीजे ॥
रजोतमोमयधीवृत्तीलख । करोतासकोनाशपाशलख ॥
निर्मलसतोवृत्तिसोंमिलकर । नरोकरोतुममननिर्मलतर ॥
ऐसेविशदचित्तकोलोको । सम्यकनिजस्वरूपमहिंरोको ॥
चितचेतनबिबनिर्मलताँते । होहिअभेदसजातीजाँते २७
भेदसजातीपुनः विजाती । स्वगतत्रिभेदअतीतअजाती॥
ताँतेताँमोंवृत्तिसजाती । अरपोजनोंतुमूदिनराती ॥ २८॥
जीवईशको भेदनभोरा । जाँहिंमिले पुन नाहिं विछोरा ॥
सकलकामनात्यागअधीनो।सर्वेच्छातजताँकोचीन्हो २९॥
यांतनमांहिंनिजातमसुखको । अनुभवकरोहरोभवदुखको
मोरगिरामोंतोरसनेहा । धरोतबेतुममममतिएहा ॥ ३० ॥
दोहा-विषम दुखद क्षण भंग मय, भोगि रूप संसार ।
ताँकोविद संसार सम, कोविद देत निवार ॥३१॥

---

१ विषम अर्थात् अति टेढामेढा दुःखके देनेवाला तथा क्षण क्षणमें रूपा-

श्लोकः।

तस्मादनन्तमजरं परमं विकाशि तद्ब्रह्म
वाञ्छत जना यदि चेतनस्थाः॥ यस्या-
नुषङ्गिण इमे भुवनाधिपत्यभोगादयः कृप-
णलोकमता भवन्ति॥ १०४॥

सवया।

जबहो बुधिमान पुमान भवानतबीततब्रह्मकु ध्यान धरो।
जुअनंत विकाश परं अजरंततलाभतियान न लाभ परो।
रुचिहेतु विपश्चित केचितकोभवभोग कदाचितहै सगरो।
जन नीच करैरति बीचइने अब तज्ञ विषेइतनोंअँतरो ३२

तोटक छंद।

जडरूपसबीतनआनजिते। जिनमें न शुभाशुभज्ञानकिते
चिदएकलखोनरकेतनको। जिसमाँहिंलखेसतचेतनको॥
सुखरूप अनंतपरं अजरं। अजरूपविकाश अनूपहरं॥
समयेदशलक्षणआतमके।अधुनारथभाखतहैतिनके॥
वहिसत्य त्रिकालअबाधजुहै। इनमैंश्रुतिलौकिकमानदुहै॥
श्रुतिवाक्यसदेव इत्यादि ररें। जनजेजनमाँतरकामकरें॥

–न्तर बदलनेवाला (भोगि) सर्पके शरीर जैसा यह जगत् है। इसका विद अर्थात् ज्ञान (संसार) महाजलजंतुवत् निगरजानेवाला है अथवा इसको संसार नामक महाजलजीवकी तरह भयानक जानवर कोविद (पंडित) तत्त्व-वेत्ता लोग त्याग देते हैं।

फलताँकृतकोइतलोकमिले । इतकीकरणीपरलोकफले॥
इमजीवमरैनहिंलोकमते । सबजीवकुजीवअहेजिहँते ॥
मनधीतनलौजडरूपसबी । नस्वतेजिनमोंकछुज्ञानकबी॥
इकचेतनतेसबचेतनहैं । इतिहेतुचिदातम धीरलहैं ॥३७॥
सुखसागरब्रह्मकिअंशकनी । अनुस्यूतत्रिलोकिविषेसघनी
थितकंचनकंदलमाहिंयथा । सबभोगनमोसुखताहितथा॥
तिहँते न ऋते सुखनैक किते । सुख मूरति स्वातमहेतुइते
नप्रमाणविषेनहिंनाशजिसे । परिपूरणऔनहिंजन्यकिसे३९॥
इतिहेतु अनंत निजातम है । परते पर जो परमातम है॥
तन वाम तनै धन धामपरे।जिहँवेदमनादि न वेद ररे ४०॥
इति रीतिपरातम वेदभना । अजरातममायककायबिना ॥
अथवा अशिअग्निकटेनदहे । सबकातमतेअजरासुकहे॥४१॥
इमपारथकोभगवानरटो । नाहिं जन्यअनादिस्वतेप्रगटो ॥
भवहेतु विशेषण चारगहे । तसमातअजातमवेदकहे४२॥
नाहिंजाग्रनस्वप्ननींदविषे । सकुचातबिकाशस्वरूपविषे॥
थकवेदहटेउपमाभनके । त्रिपुटीबिनएकविषे किनके४३॥
इतिहेतु अनूप पुनः समहीं । दुग्धादिसमं परिणाम नहीं॥
जितएकरसातमवेदकथा । अथवासबमोंसमरूपतथा४४॥
तुमचेतनकायकुपाय नरो । इसचेतनमोंअतिप्रीतिकरो ॥
भुवनाधिपतादिकभोगजिते । ततब्रह्मअवांतरएभितिते ४५
द्युति दीप यथा रवि मैं वरते । नरते इनमैं नरजे वरते ॥
इनमैं जन मूढ सनेह करें । एहि हेतु पुनः पुन देहधरें४६

तनुचेतन चेतन हेतु भयो। भव भोगन हेतुन देवदयो ॥
इतिहेतुजनोंतुमभोगतजो। तनमानसमोंनिजब्रह्मभजो ४७॥

श्लोकः।

त्रैलोक्याधिपतित्वमेव विरसं यस्मिन्महा-
शासने तल्लब्ध्वासनवस्त्रमानघटने भोगे
रतिं मा कृथाः॥ भोगः कोऽपि स एक एव
परमो नित्योदितो जृम्भते यत्स्वादाद्विरसा
भवन्ति विषयास्त्रैलोक्यराज्यादयः॥१०६॥

कवित्त।

परम उचित नित्य स्वप्रकाश सत चित,
ऐसे एक ब्रह्ममैंको एक जन बसे है।
कंजपूत पुरहूत की विभूति भूतशिखी,
घासराशके समान मानके न फँसे है॥
तीन लोक राज्य आदि संपदा अस्वाद भासे,
जाकी छाया मात्र कर माया मात्र लसे है।
ताते भिन्न भोग क्षणभंगुरको राग तजो,
रागद्वेष नाग रिदे विलमों न धंसे है॥ ४८॥

दोहा।

भोग राग जबहीं गयो, गयो द्वेष तिहँ संग।
जब विलाय यहि द्वैतभ्रम, तबै सबे चिदअंग॥४९॥

श्लोकः ।

भोगास्तुङ्गतरङ्गभङ्गचपलाः प्राणाः क्षण-
ध्वंसिनः स्तोकान्येव दिनानि यौवनसुखं
प्रीतिः प्रियेष्वस्थिरा ॥ तत्संसारमसार-
मेव निखिलं बुद्धा बुधा बोधने लोकानुग्र-
हपेशलेन मनसा यत्नः समाधीयताम् १०६ ॥

कवित्त ।

तुंगभोग इंद्रलोक सत्यलोकलग जेजे,
तेतेही तरंग सम भंग पहिचानो रे ।
जीवनके जीवनेकी रास एक श्वास सोऊ,
दामनी समान क्षण माहिं हाँन जानो रे ॥
यौवनको सुख थोरे दिनोंमें विमुख हो रे,
मीतन की प्रीति पुनि नीति न पछानोरे ।
सकल संसारको विचारके असार तजो,
बोधहेतु बुद्धिमानो मेरी बुद्धि मानो रे ॥ ९० ॥

दोहा ।

भुख आत्माके दर्शहित, चिता दर्शको शोध ॥
सभ पर करुणा रेणु कर, विनशे द्वैत विरोध ॥९१॥
दशमो सर्व सुहृद अती, भयो सुअंतर्धान ।
हरे सकलके दुःखको, करे वेग कल्यान ॥ ९२ ॥

सोरठा।

रुद्राध्याय मँझार, अधुना निंदहिं नारिको।
चार श्लोक उचार, जाते तजे उदार त्रिय ॥ १ ॥

श्लोकः।

स्तनौ मांसग्रन्थी कनककलशावित्युपमितौ मुखं श्लेष्मागारं तदपि च शशाङ्केन तुलितम् ॥स्रवन्मूत्रक्लिन्नं करिवरकरस्पर्धि जघनं मुहुर्निंद्यं रूपं कविजनविशेषैर्गुरुकृतम् ॥ १०७ ॥

कवित्त।

मांसग्रंथि कुचनको कंचनके कुंभ कहैं,
सोमसम मुख कफधामको उचारे हैं,
चंपाकलिके समाने दाडिमके दाने भाने,
हाडनकी दांतपाँतिको दिवाने सारेहैं ॥
मूत्र भिगी जंघनकी संघनी बडाई भने,
निंदत गजिंद कर केलाको निवारे हैं।
अहो निन्दायोग्य रूप अंगनाको ताकी ऊप,
ध्वने मतवारे शीश धुने मतिवारेहैं ॥ २ ॥

श्लोकः।

दीनादीनमुखैः सदैव शिशुकैराकृष्टजीर्णाम्बरा क्रोशद्भिः क्षुधितैर्निरन्नविधुरा

दृश्येन चेद्देहिनी ॥ याच्ञाभङ्गभयेन गद्गदगलत्त्रुट्यद्विलीनाक्षरं को देहीति वदेत्स्वदग्धजठरस्यार्थे मनस्वी पुमान् ॥ १०८ ॥

कवित्त ।

जठराग जार पेट निजताके शांत हेतु,
कौन मानी प्राणी देहि वाणीजो उचार है ।
गदगद गलत तुटत लीनअंक जामें,
याँचाभंग भैसों ऐसी गिराभी न ररहै ॥
भूंखे बार रोके गार देके टूको मांगे माते,
दीनादीनमुख जाके क्षीणा पट हर है ।
जौलौंऐसी निजनारी व्याकुली निहारी नाहिं,
पेखनेते पेखने ज्यों नाचे घरघर है ॥ ३ ॥

श्लोकः ।

सत्यामेव त्रिलोकीसरिति हरशिरश्चुम्बिनीवच्छटायां सद्वृत्तिं कल्पयन्त्यां वट-

१ भूखे बालक रोरोंकर अपनी मातासे गाली देकर खानेको मांगते हुए तथा भूखेसे दीन और क्रोधसे अदीन मुखोंवाले होकर अपनी माताके ऊपरका फटासा वस्त्र खींचते हुए पुत्रोंवाली अपनी नारी जबतक ऐसी व्याकुल नहीं दिखी तबतक कौन मानी प्राणी दीन वाणीको कह सकता है अर्थात् कोई नहीं परन्तु ऐसी अपनी स्त्रीके देखनेसे इस पुरुषको पेखने अर्थात् तमाशेके बन्दरकी तरह घरघर नाचना पडता है ।

विटपभवैर्वल्कलैः सत्फलैश्च ॥ कोऽयं विद्वान् विपत्तिज्वरजनितरुजातीवदुःश्वासिकानां वक्त्रं वीक्षेत दुःस्थे यदि हि न बिभृयात् स्वे कुटुंबेऽनुकम्पाम् ॥ १०९ ॥

दोहा।

दुरत हरत त्रैलोकके, तुरत त्रिलोकी सरित।
ईश शीशकी जटाको, छुहाति छटा जिहँ सरंत ॥ ४ ॥
तातटपर संघट विटप, वल्कल फुल फल दाय।
सुखद सर्वदा रुचित शुचि, शुभवटादिकी छाय ॥ ५ ॥

सोरठा।

अस सुरसारिके होत, कूपन नृपन दुर्मुखनको।
निरखत निपुणन कोतैं, निजकुख पोषणकारणे ॥ ६ ॥

दोहा।

उत्पत विपता तापते, दुसह दुःख जु क्षुधादि।
निज कुटुंब अस विकल लख, करे सुजन जु प्रसादि ७॥
वही पुरुष परिवारकी, विपता हरण निमित्त।
वायक सायक खलोंके, सहे सही हितवित्त ॥ ८ ॥
दुखी देख परिवार निज, दुखी होत मतिहीन।
भ्रष्ट आतमानंद ते, भयो दीन ते दीन ॥ ९ ॥

---

१ गमन करती हुइ। २ तरफ।

करुणा करे कुटुंबपर, दुखी देख तिँहँ अंध ।
नरते दुख टरते न तिँहँ, जो अदृष्ट प्रतिबंध ॥ १० ॥
जासं कृपाकी कृपाकर, नाश उभय आनंद ॥
ता करुणाते नरनको, मरणा शुभ विन मंद ॥ ११ ॥

सोरठा ।

तितितितिकरतेकाम, भवतदुःखपरिणाम जित ॥
त्रियानुकंपा दाम, गरे परी पशुवतचरे ॥ १२ ॥

दोहा ।

दुःखविसर्जनकृपणधी, सहित कष्टतेकष्ट ।
निशिवासर आसुर मती, करत स्वार्पकोनष्ट ॥ १३ ॥
बह्योजात भव सिंधु माहिं, पायो कष्ट अवाच ।
दया न शठ निजपर करै, जाते दुखते बाच ॥ १४ ॥
सुजन मया निजपर करे, अपने करे उधार ।
भजे हरी हरिद्वारको, तजे कुटिल परिवार ॥ १५ ॥

सोरठा ।

मात तात गुरुनारि, जो विघनी हरिभजन माहिं ।
ताको डार उदार, हरिभज जन्मसफल करै ॥ १६ ॥

---

१ जिस कुटुंब पर कृपाकी कृपासे इस पुरुषका लोक परलोकका अथवा व्यवहार परमार्थका उदय आनन्द नाश होताहै उस करुणासे तो पुरुषोंका मरण अच्छा है परन्तु (मन्द) मूखके विना अर्थात् मूर्खको मरना काम नहीं परन्तु विचारशीलको तो मरना ही अच्छा है । २ अपने आपको ।

श्लोकः।

विरमत बुधा योषित्सङ्गात्सुखात्क्षणभं-
गुराद्व्रजत करुणामैत्रीप्रज्ञावधूजनसङ्ग-
मम् ॥ न खलु नरके हाराक्रान्तं घनस्तन-
मण्डलं शरणमथवा श्रोणीबिंबं रणन्मणि-
मेखलम् ॥ ११० ॥

चौपाई।

योषित युत संभवसुखजोऊ। हरोनरोक्षणभंगुरसोऊ ॥
आयुस्पर्शमात्रहैताकी।भोगतपरमदुःखतिहँबाकी ॥१७॥
भोगानन्दनधनबिनपावत। बिनाअनर्थद्रव्यनहिंआवत ॥
विषयभोगसुखलाभनिमित्त। करअनर्थकछुसंचितवित्त ॥
ताकरदुखमिश्रितिसुखभोगत। ताफलमरकरलहितअधोगत।
तातेनखशिखाग्रलौंनारी। मोक्षविषे प्रतिबंधकभारी ॥
निकरदुखांकुरत्रियकेगाता। तजेत्रिधाविधिताहिंप्रमाता॥
घनकुचमंडलमृदुरमणीको।संयुतमुक्ताहारमणीको ॥२०॥
सर्वओर अति सुंदरलागे। हेरत जास मनोभव जागे ॥
हेममणीमयबणीतडागी। श्रोणीबिंबोपर वरलागी ॥२१॥
अतिशब्दायमानअभिरामी।जिहंध्वनिसुनजनमुह्यतकामी
अंग अंगनाकेहैजेते। हेतुअनंगागनिके तेते ॥ २२ ॥
तामें जंतु निरंतर जरते। उरविचारमय वारिनधरते ॥
क्रोध लोभ मोहादिवक्रछल। त्रखौमनेकैमनतुल्यबल ॥

एक पंचशरको जहँवासा । तहाँ क्रोधलौकरहिंनिवासा ॥
जहाँ एककी गणती आवें। तहाँ अनेक अवश्य रहावें२४
नरतनु मो जन्में अरु मरहैं । जबकुसंगसतसंगतिकरहैं ॥
सर्व अनर्थ हेतु सुख हंता । गर्जत सब अपवर्गप्रयंता २५
सब शंबर[2] सम उरको जारत । शमदमादिसंतोषाहिटारत॥
त्रियके गात सुअंबर भूषण।दर्शें कबी विलोकेदूषण२६
जाकरमन्मथमथेनमनको । नाँतरमनवपुहैत्रियतनको ॥
लगो बाम मों कामउपावे । प्रथम विवेक शमादिनशावे॥
छलामर्ष मदमोहसनेहा । इनहिं अवयवहिंसहित अदेहा[3] ॥
भयोपुष्ट प्रतिजन्म मँझारी । बृहद्भानु[4]इव जारत भारी२८
याविधिनिकरअवधहतकरके ।परतनकरमहिंजबनरमरके
तहाँताहिनरकागनिजारे । दुःखअवाच्यअनुभवहिंसारे ॥
तेकतनरकदुःखतेराखहिं ।नहिंराखहिंप्रतितामहिंराखहिं॥
इत उत माहिं तपावनवारे । नारिअवयवहृदयजबधारे ॥
ताते सङ्गवामको तजिये । नातर अवरवधूजनभजिये ॥
करुणा मैत्री प्रज्ञाभारी । सेवहु सुखद अयंत्रय नारी ॥

---

१ इस पुरुषशरीरही में इन कामादिकोंका विशेषरूपसे जन्म होता है और इसीमें सत्संग मिले तो इनका मरण भी होता है । २ कामादि सभी (संवर) शीत जलकी तरह उरमें प्रवेश कर उसको जडीभूत कर देते हैं अथवा सबी संबर कहिये अतिबली हैं तथा समान हैं और मिलके उरको जलाते रहते हैं । ३ कामदेव । ४ अग्नि ।

सोरठा।

मतदर्शों त्रिय अंग, जा कदापि चूके पिखो।
निश्चय लगे कलंक, भाद्र चौथके चंद्रवत ॥ ३२ ॥

दोहा।

त्रियानिंद एकादशो, अलं भयो अध्याय।
बल गुण गण नरके हरे, मरके नरके पाय ॥ ३३ ॥

दोहा।

वृद्धावस्था द्वादशे, पांच छंद कर निंद।
दुःखनिरादर चिंतानिधि, दिनपौरुष मतिमंद ॥ १ ॥

श्लोकः।

वर्णं सितं समभिवीक्ष्य शिरोरुहाणां स्थानं जरापरिभवस्य तदेव पुंसाम् ॥ आरोपितास्थिशकलं परिहृत्य यान्ति चाण्डालकूपमिव दूरतरं तरुण्यः ॥ १११ ॥

कवित्त।

जराकर सेत वार नरोंके निहार नारि,
करें ताहिं त्रिसकार भांगे फेर नारिको।

---

१ अधम पुरुष तिरस्कारको सहकर भी फिर उसी स्त्रीको चाहता है और स्त्री उस वृद्धपुरुषके हाडरूपी घटीको और रज्जुरूपी नाडिओंको तथा मेदमज्जादि रसरूपजलको मन्द देखकर ऐसे छोड देती है जैसे कुलीन ब्राह्मणकी स्त्री चमारके कूपपर उक्त निषिद्ध सामग्रीको देखकर उस कूपको छोड देवे।

हाड घटी रज्जु नारि मंदर सहेर डार,
विप्रनारि वृद्धरूप कूप चमिआर को ॥
दाहे तीन[१] ताप भानु नैन बैन ज्ञान कान,
तजें ताहिं मात आदि ज्यों उदार दारको ।
अहो कष्ट जीव दुष्ट तजे न अनिष्ट अजे,
नारी तजे तनु भजे मन अजे नारिको ॥ २ ॥

श्लोकः ।

व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम् ॥ आयुः परिस्रवति भिन्नघटादिवाम्भो लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम् ॥ ११२ ॥

दुवैया छंद ।

व्याघ्रीके सम स्थित ह्वैकर जरा अवस्था करति प्रहार ।
तीक्षणक्रूर नखाग्र रोगकर परिताडत तनुको बलधार ।
उचित अवध परिस्रवत सतत इव फूटे घटते छूटेवारि ।
लोक सो अहित तदपि आचर है अहो करे हित नांगीकार ॥ ३ ॥

---

१ आध्यात्मिक आधिदैविक तथा आधिभौतिक यह तीन ताप रूप सूर्य उस वृद्धको तपाता है और नेत्रोंसे देखना मुखसे बोलना चित्तकी ज्ञानशक्ति कानोंसे सुनना यह सब उसके जाते रहते हैं अर्थात् जैसे विषयी पुरुष माताके समान वृद्धा स्त्रियोंसे उपराम रहता है वैसेही नेत्रादि इन्द्रिय भी वृ पुरुषसे उपराम होजाते हैं । २ शरीरमें नाडियां भिन्न २ दीख रही हैं ।

श्लोकः।

गात्रं सङ्कुचितं गतिर्विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलिर्दृष्टिर्नश्यति वर्धते बधिरता वक्त्रं च लालायते॥ वाक्यं नाद्रियते च बान्धवजनैर्भार्या न शुश्रूषते हा कष्टं पुरुषस्य जीर्णवयसः पुत्रोऽप्यमित्रायते॥ ११३॥

मनोज छंद।

सकुचे सब अंग विभंग सुचाल।
पुन भ्रष्ट समष्ट भई रद माल॥
द्युति लोचनकी सब मोचन अस्त।
नहिं कानसुने कलहा न समस्त॥ ४॥
मुख मध्य भई कफ वृद्ध महान।
इतिहेतु स दुःख गतागत प्राण॥
कछु याचन हेतु मुखों जब वाच।
जन बंधु बकें तब वाक्य अवाच॥ ५॥
ललंना पलना मिलनाजु तजंति।
वहि नाह कि सेव कु नाँहिं करंति॥

---

१ ललना अपनी स्त्री जो कि (बिछौना) शय्यापर मिलकर छोडा नहीं करती थी अथवा पलभर न मिलनेसे जो अनाज छोड देती थी वह भी अपने (नाह) पतिकी सेवा नहीं करती।

पुनि जीरण आयुष मानुष जोय ।
निज पुत्र अपी सम शत्रु विलोय ॥ ६ ॥
तिनके दुर्वायक सायक संग ।
उर वेधत भी न तजे तिन संग ॥
इति रीति व्यतीत भई सब आउ ।
न अजेपि तजे निज मन्द सुभाउ ॥ ७ ॥

दोहा ।

जरा उपाय न ह्वै सके, जरा आयुके माहिं ।
भवसागरके तरणको, तरुण अवस्था आहि ॥ ८ ॥

श्लोकः ।

वलिभिर्मुखमाक्रान्तं पलितैरङ्कितं शिरः ॥
गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणा-
यते ॥ ११४ ॥

कवित्त ।

आननकी छबि वली गणोकर टली गली,
काननकी गली बलअंकोंमें न भास है ।
लोयनके माहिं कछु लोय नाहिं परे स्वच्छ,
रसना मो रसनाशो नास कला नाश है ॥
केश भए उजर न रह्यो कछु उजर,
जवानी गई उजर न श्वासको विश्वास है ।
तृष्णातो अनंत अंत भयो है संवात सब;
शांति भई शांत नाहिं शांत भोग आश है ॥ ९ ॥

श्लोकः।

निवृत्ता भोगेच्छा पुरुषबहुमानो विगलितः
समानाः स्वर्याताः सपदि सुहृदो जीवित-
समाः॥ शनैर्यष्ट्युत्थानं घनतिमिररुद्धे च
नयने अहो धृष्टः कायस्तदपि मरणापाय-
चकितः॥ ११८॥

कवित्त।

तनुवृद्ध भएते न वृद्ध भई भोग इच्छा,
मनमें तो भोगनकी कोटिमन रति है।
सने सने उतथान लोचनकी द्युतिहान,
मानवको बहुमान हान भयो अति है॥
सखे सम वैसवारे प्राणोवत जेई प्यारे,
कबके पधारे नाक देखी ऐसी गति है।
अहो अजे नीच निज मीच बीच हासी भजे,
जीवन चहित मृत्यु जीव न चहति है॥ १०॥

सोरठा।

दुख अनेकको गेह, विना विवेक विवेककर।
निंद जरजरो देह, भयो इति श्रीद्वादशो॥ ११॥

दोहा।

कहें त्र्योदशे कृपाकर, संकीरण उपदेश।
शंकर बीस श्लोक कर, जन मन नलिन दिनेश॥१॥

श्लोकः ।

जातः कूर्मः स एकः पृथुभुवनभरायार्पितं येन पृष्ठं श्लाघ्यं जन्म ध्रुवस्य भ्रमति नियमितं यत्र तेजस्वि चक्रम् ॥ सञ्जातव्यर्थपक्षाः परहितकरणे नोपरिष्टान्न चाधो ब्रह्माण्डोदुम्बरान्तर्मशकवदपरे जन्तवो जातनष्टाः ॥ ११६ ॥

गीया मालतीछंद ।

है धन्य कूरम एक सो पर अर्थ जिहँ भव लीन है ।
पृथुभवन भारतरे जिनें निज पृष्ठ अर्पण कीनहै ॥
अतिजन्मध्रुवकोयोग्यकीरतिजासकीरति हारि विखे ।
चौफेर जाँके तेज चक्र भ्रमंत रोक्यो सब पिखे ॥ २ ॥
ज्यों मशक गूलर फलविषे संघट महा संकट सहैं ।
पख वृथा संभव ताहिंके नहिं अर्थ ऊर्द्ध विचररहै ॥
संजात जहँ मर जात तहँ ब्रह्माण्डमें त्यों जन्तु हैं ।
नहिं ज्ञात धर्माधर्मकी संभोगमें रतिवंत हैं ॥ ३ ॥
परमार्थ अरु परस्वार्थ द्वै वृत्ति पंख संयुत जन सबे ।
प्रारब्धके वशिस्वार्थके पुरुषार्थ करते संदबे ॥
जनजहाँ लागे प्राण त्यागे विनातिसे नाहिं तजत हैं ।
संवेद युक्ति न बंध निज अश्रेयको जड भजत हैं ॥४॥

दोहा ।

गूलर फल ब्रह्मांडमों, मच्छर मानव आन ।
गहें मुक्ति बिन जन्मगण, स्वपर अकिंचितज्ञान ॥५॥

श्लोकः ।

स जातः कोप्यासीन्मदनरिपुणा मूर्ध्नि धवलं कपालं यस्योच्चैर्विनिहितमलङ्कारविधये ॥ नृभिः प्राणत्राणप्रवणमतिभिः कैश्चिदधुना नमद्भिः कः पुंसामयमतुलदर्पज्वरभरः ॥ ११७ ॥

कवित्त ।

वही जन जनमें कपालजाके उज्ज्वलको,
धारयो समरारि शिरे ऊचो अलंकार मान ।
मानद अमान मान जाकों तन धन हान,
परकामहेत होत वही जन धन्य जान ॥
केचित इदानी प्राणी वृथा महा मानी भये,
अबलादि याचकान कीनो मान जो महान ।
तास मान तापते पुमान कैसे तपे आप,
मानके समान सापमानको न करे मान ॥ ६ ॥

दोहा ।

अहंकारते होत सब, क्रतु व्रतादि फल हान ।
अरु विन गुण जो दर्प है, सो अरि सर्प समान ॥७॥

सोरठा ।

ताँते मत मतिमान, मान करे अभिमानको ।
गर्व सर्व दुख खानि, सुख अवास मद नाश है ॥८॥

श्लोकः ।

पातालान्न समुद्धृता बत बलिर्मृत्युर्न नीतः क्षयं नोन्मृष्टं शशिलाञ्छनस्य मलिनंनोन्मूलिता व्याधयः॥शेषस्यापि धरां विधृत्य न कृतो भारावतारः क्षणं पौरुष्यं त्वकृतं रुषाभिगणनां मिथ्या वहन् खिद्यते ॥ ११८॥

कवित्त ।

बलिको पतालसे निकालके न नाक पठ्यो,
कालको न नाश कीनो भव रिपु पीनो है ।
विधुकी न मैल धोई व्याधिकी न जड खोई,
शेषशीश भारसो न काहूँ क्षण लीनो है ॥
पौरुष न कछु कीनो क्रोध अभिमान पीनो,
वृथा मान लीनो नर नाग सिंह चीनो है ।
कीकरको तरुलाये कीकर सुफल पाये,
साधुनको पदचाहै साधनते हीनो है ॥ ९ ॥

श्लोकः ।

रम्याश्चन्द्रमरीचयस्तृणवती रम्या वनान्तःस्थली रम्यः साधुसमागमः शमसुखं

काव्येषु रम्या कथा । कोपोपाहितबाष्प-
बिन्दुतरलं रम्यं प्रियाया मुखं सर्वं रम्यम-
नित्यतामुपगते चित्ते न किञ्चित्पुनः॥ ११९॥

सवैया ।

रमणीकमयंककियाकिरणाकलभूमि बनातहरेतृणवारी ॥
सतसंगतिसुंदरचारुसतोसुखमंजुनिबंधकथामृत भारी ॥
रुठसोंउठकंलबलोचनतेसुठताँमिलनारिमुखांबुजकारी ॥
कमनीयसबीचितशांतजबीरमणीय तवीनकछूनिरधारी ॥

दोहा ।

दुखानंद अरु मित्र अरि, पुना सुरूप कुरूप ।
द्वन्द्ववादपरमादमों, अप्रमादशिवरूप ॥ ११ ॥

सोरठा ।

निज कुख पोषग काम, तुल कुल दीन कबी न है ।
याचे वन वा ग्राम, मानी प्राणी धन्य बहु ॥ १२ ॥

श्लोकः ।

पुण्ये ग्रामे वने वा महति सितपटच्छन्न-
पालीं कपालीमादाय न्यायगर्भद्विजहुत-
हुतभुग्धूम्रधूमोपकण्ठम् । द्वारं द्वारं प्रवृत्तो
वरमुदरदरीपूरणाय क्षुधार्त्तो मानी प्राणी
सुधन्यो न पुनरनुदिनं तुल्यकुल्येषु
दीनः ॥ १२० ॥

सवैया ।

वनग्रामनमोंढकपालीकपालीसितांबरसोंगाहिभिखस्वतंतर
जिहधामनमोवरवामनहोम तआज्यतिलाहिप्रजारबसंतर।
तिहँ होमके धूमसों मंदिरकोलख धूसर अंतर भागनिरंतर।
विचरे सुप्रसाद प्रसाद त्रिषे भख आदि प्रसादभखे परतंतर।

सोरठा ।

जो जन मानी आहि, भोजन भिक्षाको करै ॥
वायक सायक नाहिं, सहे सजाती जनोंके ॥ १४ ॥

श्लोकः ।

येनैवाम्बरखण्डेन संवीतो निशि चन्द्रमाः॥
तेनैव च दिवाभानुरहो दौर्गत्यमेतयोः १२१॥

दोहा ।

जिसअंबरके खंडकर, निशिमाहिं सोम वितीति ।
तिसे खंड कर पुनि दिने, मारतंड संवीत ॥ १५ ॥
अद्भुत दुर्गति दुहुँनकी, भ्रमत सर्वदा जोय ।
चतुहेतु यामो कहे, लहे चतुर नर कोय ॥ १६ ॥
कैधों कर्मविपाकको, विधुदिनमणिभोगंत ।
विन भोगे भागे नहीं, कर्मगती बलवंत ॥ १७ ॥
कै हरि मय लखि जगतकों, सेव करत द्वयदेव ।
कीधों हरि आज्ञाकरी, भव मर्याद हितेव ॥ १८ ॥
अथवा संत जनानके, लक्षणको दर्शंत ।
हेर शुभाशुभ लोक गति, है असंग विचरंत ॥१९॥

तजहिं आपदा माहिं भी, नहीं निजापद ज्ञान ।
सूचत गुण मुक्तानके, चन्द्रभानु गति मान ॥ २० ॥
ताहिं गतागतको कहित, दुर्गति दुर्मतिवंत ।
पूर्व उक्त चहुँहेतको, जे न जान ते जंतु ॥ २१ ॥

श्लोकः ।

विवेकव्याकोशे विदधति शमे शाम्यति तृषा परिष्वङ्गे तुङ्गे प्रसरतितरां सा परिणतिः ॥ जराजीर्णैश्वर्यग्रसनगहनाक्षेपकृपणः कृपापात्रं यस्यां भवति मरुतामप्यधिपतिः ॥ १२२ ॥

दोहा ।

हरे तृषा वैराग तब, धरे विवेक विकाश ॥
तुंग भोग संयोग कर, होत न तृष्णा नाश ॥ २२ ॥
प्राति प्रवृद्ध तृष्णा भवत, जिम कृशानु घृत संग ।
यथा विवेकीके उरे, विद्यावृद्ध अभंग ॥ २३ ॥
जरासहित जीर्णलखी, अपनी शक्र विभूति ।
दुखी भयो मनमाहिं तब, ताहिविनापुरुहूत ॥ २४ ॥
नष्ट विभव भव दुसह दुख, तज नहिंसके सुरेश ।
विष्णु आदिकी कृपाको, पात्र भयो अमरेश ॥ २५ ॥
जरा यातुधानादि कर, भवत विभव मम हान ।
करुणाकर करुणाकरो, तासत्राण भगवान ॥ २६ ॥

तुंग भोग संयोग कर, नाश जु होती प्यास ।
मघवाहोतो दीन कत, हरि अजादिके पास ॥ २७ ॥
विविध विषयके भोगकर; नहिं विबुधेश अघात ॥
स्वल्प अवधलव भोगकर, नरन शांति कत जात॥२८॥
ताते इच्छा नाशकी, जाको इच्छा आहिं ॥
उपशम धरे विचार युत, टरे एकते नाहिं ॥ २९ ॥

श्लोकः ।

शिरः शार्वं स्वर्गात्पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरं गिरीन्द्रादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि जलधिम् ॥ अधोधो गङ्गेयं पदमुपगता स्तोकमथवा विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ॥ १२३ ॥

चञ्चला छन्द ।

गंगनीर ए कछू अधे अधे गती करंत ।
नाकते हरे शिरे पुना गिरिंद पै गिरंत ॥
गिरिंदते धरापरै धरातिसिंधु मैं परंत ।
शून्य जे विवेकते अनेक योनिते धरंत ॥ ३० ॥

श्लोकः ।

तृषा शुष्यत्यास्ये पिबति सलिलं स्वादु सुरभि क्षुधार्तः सञ्शालीन् कवलयति



ॐ नमो भगवते रामकृष्णाय

श्रीरामकृष्ण - आरात्रिकम्

खंडन-भव-बंधन जगवन्दन वन्दि तोमाय ।
निरंजन नररूपधर निर्गुण गुणमय ।।
मोचन-अघदूषण जगभूषण चिद्घनकाय ।
ज्ञानांजन-विमल-नयन वीक्षणे मोह जाय ।।
भास्वर भावसागर चिर-उन्मद प्रेम-पाथार ।
भक्तार्जनयुगलचरण तारण-भव-पार ।।
जृम्भित-युग-ईश्वर जगदीश्वर योग-सहाय ।
निरोधन समाहित-मन निरखि तव कृपाय ।।
भंजन-दुःख-गंजन करुणाघन कर्म-कठोर ।
प्राणार्पण-जगत-तारण कृन्तन-कलि-डोर ।।

वंचन-काम-कांचन अतिनिन्दित-इन्द्रिय-राग ।
त्यागीश्वर हे नरवर ! देह पदे अनुराग ।।

निर्भय-गत-संशय दृढ़निश्चय-मानसवा न् ।
निष्कारण-भकत-शरण त्यजि जातिकुलमान।।

संपद तव श्रीपद भव गोष्पद-वारि यथाय ।
प्रेमार्पण समदरशन जगजन-दुःख जाय ।।

नमो नमो प्रभु वाक्यमनातीत
मनोवचनैकाधार ।
ज्योतिर ज्योति उजल हृदिकन्दर
तुमि तमभंजनहार ।।

धे धे धे लंग रंग भंग बाजे अंग संग मृदंग ।
गाइछे छंद भकत-वृन्द आरति तोमार ।।

जय जय आरति तोमार ।
हर हर आरति तोमार ।
शिव शिव आरति तोमार ।।

श्रीरामकृष्ण-स्तोत्रम्

ॐ ह्रीं ऋतं त्वमचलो गुणजित् गुणेड्यः
नक्तन्दिवं सकरुणं तव पादपद्मम् ।
मोहंकषं बहुकृतं न भजे यतोऽहम्
तस्मात्त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो ।। १ ।।

भक्तिर्भगश्च भजनं भवभेदकारि
गच्छन्त्यलं सुविपुलं गमनाय तत्त्वम् ।
वक्त्रोद्धृतन्तु हृदि मे न च भाति किञ्चित्
तस्मात्त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो ।।२।।

तेजस्तरन्ति तरसा त्वयि तृप्ततृष्णाः
रागेकृते ऋतपथे त्वयि रामकृष्णे ।
मर्त्यामृतं तवपदं मरणोर्मिनाशम्
तस्मात्त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो ।।३।।

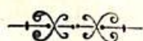
कृत्यं करोति कलुषं कुहकान्तकारि
ष्णान्तं शिवं सुविमलं तव नाम नाथ ।
यस्मादहं त्वशरणो जगदेकगम्य
तस्मात्त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो ।।४।।

श्रीरामकृष्ण-प्रणामः

ॐ स्थापकाय च धर्मस्य सर्वधर्मस्वरूपिणे ।
अवतारवरिष्ठाय रामकृष्णाय ते नमः ।।
ॐ नमः श्री भगवते रामकृष्णाय नमो नमः ।।
ॐ नमः श्री भगवते रामकृष्णाय नमो नमः ।।
ॐ नमः श्री भगवते रामकृष्णाय नमो नमः ।।

देवी-प्रणामः

सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यंबके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ।।
सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि ।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते ।।
शरणागतदीनार्त-परित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ।।
जय नारायणि नमोऽस्तु ते
जय नारायणि नमोऽस्तु ते
जय नारायणि नमोऽस्तु ते



शाकादिवलितान् ॥ प्रदीप्ते कामाग्नौ सुदृढतरमाश्लिष्यति वधूं प्रतीकारो व्याधेः सुखमिव विपर्यस्यति जनः ॥ १२४ ॥

कवित्त ।

जब मुख तृषा कर सूखे तब पीवे नर,
मीठे ठंढे हरके सुगंधिवारे वारिको ।
क्षुधाकरभयो दीन शालीन महीनखात,
मेलके बरीन शाक रागसों अचारको ॥
जागे मदनागे जब सानुरागे दौरतब,
नारिमें लगावै नर दृढकर नारिको ।
व्याधिके प्रहार प्रति करे प्रतिकार प्रति,
कैसे दुख भागे त्यागे संयमोपचारको ॥ ३१ ॥

सोरठा ।

तृष्णा वृद्ध अभंग, अति भोगोंके भोगकर ।
यथा अग्नि घृतसंग, संयम जल कर शांतबिब ॥३२॥

श्लोकः ।

किं वेदैः स्मृतिभिः पुराणपठनैः शास्त्रैर्महाविस्तरैः स्वर्गग्रामकुटीनिवासफलदैः कर्मक्रियाविभ्रमैः ॥ मुक्त्वैकं भवभारदुःखरचनाविध्वंसकालानलं स्वात्मानन्दपदप्रवेशकलनं शेषा वणिग्वृत्तयः ॥ १२५ ॥

कवित्त ।

चारों वेद तंत्र छठे सिमृति सताई पठे,
आगम जो दश अठे महाविसतरे हैं ।
मतोंसों विभ्रम महा कर्म क्रिया कर कहा,
देव ग्राम कुटीमो विश्राम फल करे हैं ॥
प्रलैकाल आगवत आतम विषैणी मति,
भव दुःख करहेत सो कुमति हरे है ।
शेष काम सारे वणजारे वृत्तियों निहारें,
के दुकानके पुरान करप्राण धरे हैं ॥ ३३ ॥

दोहा ।

कहा ग्रंथ गणके पढे, किं करमोंके कीन ।
चिज्जडग्रंथ प्रभेदिनी, धी उर जब प्रगटी न ॥ ३४ ॥

श्लोकः ।

रात्रिः सैव पुनः स एव दिवसो मत्वा बुधा
जन्तवो धावन्त्युद्यमिनस्तथैव निभृताः
प्रारब्धतत्तत्क्रियाः ॥ व्यापारैः पुनरुक्त-
भुक्तविषयैरित्थंविधेनामुना संसारेण कद-
र्थिता वयमहो मोहान्न लज्जामहे ॥ १२६ ॥

छप्पय छन्द ।

वही यामिनी जान पुना दिन तथा मान कर ।
मंद जंतु धावंति उद्यमात्यंत चित्तधर ॥

प्रारंभी प्रारब्ध क्रिया तहँ तहँ त्यों राते ।
वही उक्त पुनि वही भोग भुक्त दिन राते॥
इम विषय रूप या जगतके व्यापारोंकर श्रमसहें ।
परिभ्रमतविरमतनमोहकरअहोकिंनलज्जागहें ॥ ३५॥

दोहा ।

अहो शब्दपुनरुक्तितें, अतिडरपहिं बुधिमान ॥
पुनाउक्त पुन युक्त यहि, कत पुनिरुक्तिप्रमाण ॥ ३६॥

श्लोकः ।

क्षणं बालो भूत्वा क्षणमपि युवा कामरसिकः क्षणं वित्तैर्हीनः क्षणमपि च सम्पूर्णविभवः ॥ जराजीर्णैरङ्गैर्नट इव वलीमण्डिततनुर्नरः संसारान्ते विशति यमधानीजवनिकाम् ॥ १२७ ॥

गीधा मालतीछंद ।

नट वांगु नरबहुस्वांगधर वपु बाल पल महिं लसकहै ।
पुनिक्षणविषेतनु तरुण है तरुणीन भोगहिंरसकहै ॥
हत सर्व द्रव्य निमेष महिं पुनि पलक मो है धन सबी।
दुर्वृद्धता कर अंग क्षीण वलीनकरसबछबिदबी ॥ ३७ ॥
पश्चात गात किपातमें उतपात भ्रात हृदय पिखे ।
यमराजधानी भूभयानी पतित प्राणी तिहँ बिखे ॥
प्राचीन कर्म मलीनके फल दीन है भुगवे तहीं ।

अस नरकके दुख निकरते नर निकरसाके कत नहीं ॥
पुनि कहू पुण्य प्रतापते तिन तापते निकसे जबी ।
धरविविध वेष न मुग्ध वैखहिनिजस्वरूपहिंहटकबी ॥
विषवत विषमरस विष्योंके जन तिहँ विषें मनलायहैं ।
इह हेतु नर दुःखके तपाय न पाय हरके ध्यायहैं॥३९॥

दोहा ।

तजे न नट नट भाव निज, भजे अनेक स्वरूप ।
नटते नर शठ तज स्व वपु, भजै विविध निज रूप४०

श्लोकः ।

तुङ्गं वेश्म सुताः सतामभिमताः संख्यातिगाः सम्पदः कल्याणी दयिता वयश्च नवमित्यज्ञानमूढो जनः ॥ मत्वा विश्वमनश्वरं निविशते संसारकारागृहे संदृश्य क्षणभङ्गुरं तदखिलं धन्यस्तु संन्यस्यति ॥ १२८ ॥

तोटक छंद ।

बहु तुंग अगार कुमारमहाँ । न विचार पतिव्रतनारितहाँ॥
पुरुहूतसमानविभूतिघनी । नपुमान कहूँकरजातिगनी ॥
जुमहाजनमाँहिमहाजनहैं । तिनकेमनवांछितजेधनहैं ॥
बरतेममअग्रसमग्रवहे । भवमों अबमों समकौन अहे॥४२
जडजंतुइवें जडता करके । गवें अतिशयमतिको हरके ॥

सबविश्वअनश्वरमानरते।परतेभंवकूषणगृहेनरते ॥ ४३ ॥
ममतामय संगलसं गजरें । बहुयोनि धरें सुखशून्यचरें ॥
जिनयासगरैभवको मनमैं।मनकेक्षणक्षीणतज्योक्षणमैं४४
बसके वनमैं सतचेतनमैं । तद्रूपभए जु इसे तनमैं ॥
सुरपित्रसभीजनताहिजजें।तिहँनामभजेअघओघभजें ४५
दोहा—देतं दण्ड बहुदण्डधर, जे गर्वत धनपाय ।
जे सुतरां विपरीतिकै, स सकुटुंब बिब पाय॥४६॥

श्लोकः ।

यदा मेरुः श्रीमान्निपतति युगान्ताग्निनि-
हतः समुद्राः शुष्यन्ति प्रचुरनिकरग्राहनि-
लयाः। धरा गच्छत्यन्तं धरणिधरपादैरपि
धृता शरीरे का वार्ता करिकलभकर्णाग्र-
चपले ॥ १२९ ॥

गीया मालतीछंद ।

श्रीमत कनकगिरिहढजबै सुप्रलय अगनि करगिरपरे ॥
मकरादि जंतु अनंतके घर जलधिसुकाहिं तिहँ करे ॥
जब शेषनाग शिशान करके धरत अपि धरती जरे ॥
करि करभके करणाग्रवत चल कायकी तब क्यारेरे॥४७

१ पडते हैं संसार रूप अन्धे गृहमें वह पुरुष । २ जो लोग धन पाकर गर्व करते हैं उनको दण्डधर यमराज बहुत दुःख देता है और जो पुरुष सुतरां विपरीत है अर्थात् धनगर्व करनेवालोंसे साधुरीतिपूर्वक उलटा है उसके (स) वह यमराज सहित कुटुम्बके दोंनों चरण पूजताहै ।

दोहा ।

हेमाद्री वारी धरा, रवि विधु विधिना ताहिं ।
करे अंत अंतक सकल, अहं जंतु किनमाहिं॥४८॥

श्लोकः ।

आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतं तस्यार्धस्य परस्य चार्धमपरं बालत्ववृद्धत्वयोः ॥ शेषं व्याधिवियोगदुःखसहितं सेवादिभिर्नीयते जीवे वारितरङ्गचञ्चलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम् ॥ १३० ॥

कवित्त ।

शुभ शत संवत नरान की प्रमाण आयु,
तास आध भाग नाश होय रैन सोय है ।
बाल वृद्ध माहिं ताहिं आधो भाग बाधो आहि,
जाड्यता अशक्यता की खानि वैस दोय हैं ॥
शेषकी अवधि जोऊ आधि व्याधि संग सोऊ,
भ्रमणो बिदेश होऊ सेवकादि खोय है ।
जीवनकी आयु माहिं सुखको तो नाम नाहिं,
तोयके तरंगके समान भंग होयहै ॥ ४९ ॥

श्लोकः ।

कृशः काणः खञ्जः श्रवणरहितः पुच्छविकलो व्रणी पूतिक्लिन्नः कृमिकुलशत-

राद्वृततनुः ॥ क्षुधाक्षामो जीर्णः पिठरक-
कपालार्पितगलः शुनीमन्वेति श्वा हत-
मपि च हंत्येव मदनः ॥ १३१ ॥

भुजंगप्रयात छन्द।

हहा मीचको नीच मारे अनंगा।
इदं श्वान श्वानीकु चाहे आलिंगा॥
कृशा पिङ्ग काणा कटी पुच्छ गुच्चा।
श्रवे पूं व्रणोते भिगी सर्व त्वच्चा॥ ९० ॥
कृमीसंरुथके संग सो व्यावृतांगा।
कटें कीट औ मक्षका पुंज काँगा॥
तृषा भूख सों व्याकुलो जीरणांगा।
गरे बीच पेटारको पय्य घांगा॥ ९१ ॥
इसे श्वान तेभी नहीं काम बाचे।
धनी ज्वानके चित्तमों किं न राचे॥
डरे एक कामारिते मैनशूरा।
जंटी दासके पासते भी प्रदूरा॥ ९२ ॥

सोरठा।

शिव भृत शिवमय हेर, मनमथ तास न मनमथे॥
डरे दहे मत फेर, नाम अनंग अभाव ह्वै (९२)

---

१ शंकरके भक्तसे भी दूर रहता है।

श्लोकः ।

माने म्लायिनि खण्डिते च वसुनि व्यर्थे
प्रयातेऽर्थिनि क्षीणे बन्धुजने गते परिजने
नष्टे शनैर्यौवने । युक्तं केवलमेतदेव
सुधियां यज्जह्नुकन्यापयःपूतग्रावगिरीन्द्र-
कन्दरदरीकुञ्जे निवासः क्वचित् ॥ १३२ ॥

मनोज छंद ।

दरशे जन जो निज मान मलीन ।
नित क्षीण पिखे धन लाभ रतीन ॥
अरथी व्यरथे फिर जात कदंब ।
हत बन्धु जनापि स्वनष्ट कुटुंब ॥ ९३ ॥
निज नष्ट युवा जु सने सन जोय ।
इम भ्रष्ट समाज सबी जब होय ॥
बुधवाननको निज श्रेय निदान ।
युकती क सुखेन अयं सुख खान ॥ ९४ ॥
जल देव नदी कर जो शुचि आहिं ।
गिरिराज शिला उत कन्दर माहिं ॥
अथवा वन कुंजनमों बुधवन्त ।
वसके कतहूँ सिमरे भगवन्त ॥ ९५ ॥

दोहा—नष्टभए भवभोगको, पुन न भजें जन स्थान ।
कहूँ विविक्त स्थानमैं, बैठ करें हरिध्यान ॥ ९६ ॥

श्लोकः।

प्रशान्तशास्त्रार्थविचारचापलं निवृत्तनाना-
रसवाक्यकौतुकम् ॥ निरस्तनिःशेषविक-
ल्पविप्लवं प्रवेष्टुमन्विच्छति शङ्करं मनः १३३

कवित्त।

विविध प्रकार वेद अर्थके संवेद वारी,
चेतनामों चंचलाई सो निकाई हतहै।
नानाविधि वाक्यनके कौतुकमें रस जोऊ,
सो विरस भयो जाँहिं माँहिं बिलसतहै॥
भाँत भाँत सँकलविकलप प्रशान्त जामें,
रजो तमो ते रहित सतोके सहितहै।
ईश्वरकी सेवहित ऐसो चित चाहिअत,
ऐसे चितहीमों सत चितविकसत है॥ ९७॥

श्लोकः।

भक्तिर्भवे मरणजन्मभयं हृदिस्थं स्नेहो
न बन्धुषु न मन्मथजा विकाराः॥ संसर्ग-
दोषरहिता विजना वनान्ता वैराग्यमस्ति
किमतः परमर्थनीयम्॥ १३४॥

कवित्त।

हरमें सनेह तर जनम मरण डर,
उर माहिं कीनो घर बंधूमें न राग है।

मनोभव जो विकार मन्द संसकारडार,
संगदोष दुःख टार बसैकांत वाग है ॥
याँ वैराग्य भए कहा होर त्याग योगरहा,
हती सब चाहि जो वैराग्य ते वैराग्य है ।
हेत परमारथको उत्तम वैराग्य ऐसो,
भाग बडे भागको अभाग ताँते भाग है॥५८॥

श्लोकः ।

भोगे रोगभयं सुखे क्षयभयं वित्ते नृपा-
लाद्भयं माने हानिभयं जये रिपुभयं रूपे
जराया भयम् ॥ शास्त्रे वादिभयं गुणे ख-
लभयं काये कृतान्ताद्भयं सर्वं वस्तु भया-
न्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥ १३५॥

कवित्त ।

भोगन मों रोगभय सुखोंविषे क्षयभय,
धनमध्य भय भूप चोरको रहत है ।
दास माँहिं स्वामिभय जय माँझ रिपुभय,
भय कुल बीच नीच नारीको महत है ॥
मान माहिं हानि भय गुणोंमें खलान भय,
कायमें कृतांत भय भय सर्वगत है ।
निर्भय वैराग्य एक धरो नरो सविवेक,
गायो मैं अनेक अब थकी मोरि मतिहै ॥ ५९ ॥

दोहा ।

शुभ वैराग्य विवेक बिब, करहिं वेग कल्यान ।
हृगादित्य वत हरत हैं, अंधकार अज्ञान ॥ ६० ॥

सोरठा ।

रजनी विन सित चंद, निशा असित शशि हीनज्यों ।
उभय सहित आनंद, त्यों वैराग्य विवेक विद ॥ ६१ ॥

दोहा ।

सत् समस्त वैराग्यको, कह्यो भरत शतमाहिं ।
सत्य प्राप्ति हित वचन सत,धरो नरो उरताहिं॥६२॥

सोरठा ।

विन संग्रह सुविचार, पशू बद्ध ज्ञानि दुखी ।
पक्षी पंख प्रकार, उभय सहित सुखगति लहित॥ ६३ ॥

दोहा ।

मुगधहुँके उर उपल माहिं, भरत वचन वटहेतु ।
कहूँ पुण्य खग योगते, वसे लसे सुखदेत ॥ ६४ ॥
लोह छाप भाषायुत, वज्र भरतके बैन ।
सार मुमोक्षी पारखू, गहे सर्वदा चैन ॥ ६५ ॥
प्रकट विष्णु सम संस्कृत, भाषा हरि पाषाण ।
श्रद्धामान पुमानको, करत उभय कल्याण ॥ ६६ ॥

सवैया ।

तीरथानकिमाहिंसनानसमानकरे बहुदानमहानमणीके ।

शमशानमठानतरूनतरे इस थान करे उततीर नदीके ॥
मुख मौन धरे तज भौन चरे अरुवेद ररे सुपठावतनीके ।
गुणएततवृंदबरातजनावरएकबिरागविनासबफीके ६७॥

कवित्त ।

दैवी गुण कवी गण औषधि समादिपुष्टे,
तृष्णा ताप मोह तम कामचोर हतहै ।
मुदित विवेकी कामी दुःखी मूढ ब्रेहीवांमी,
उदेधि त्रियाभी मो कुसंग दिने गत है ॥
सकुचे सरोजभोगी मोक्ष सुधाके संयोगी,
श्याम श्वेत भोगी योगी मो बढै घटतहै ।
दोष वेदमाने नाहिं जनमन व्योममाहिं;
विधुवत विकसत निरवेद सत है ॥ ६८ ॥

दोहा ।

अक बृंदको गुंदकर, बंद छंदको कीन ।
तुटत युक्ति छंदार्थ जहँ, कवी सुधारो तीन ॥ ६९ ॥
योगी जनके वचनको, भोगी भेद अविंद ।
ईशकृपा बल यथामति, कह्यो सिंधुमों बिंदु ॥७०॥

कवित्त ।

बसे शिवा वामे अंग लसे भूत जूथ संग,
ग्रसे भंग शीश गंग ज्ञान तीन कालको ।

धेनु बाल वाहन सुधाल बालभाल धरे,
गरेव्यालरुंडमाल तरे सिंहखालको ॥
नाथनके नाथ हैं अनाथनके नाथदेव,
जाँके पादपाथ माथ धरें हरे कालको ।
दयासिंधु अलकाम कामरिपु सुख धाम,
हरद्यालकी नमाम ऐसे हरद्यालको ॥ ७१ ॥

सवैया ।

सुखशांत स्वरूप सवें अहिऊपरबारिजनाभ सुरेशकिराई
सबविश्वअधार अकाश प्रकारसुवारिदरंगशुभांगसबाई ॥
वरश्रीवरलोचन नीरजसे जिहँ चीनतयोगिसमाधिलगाई॥
भवत्रासकिनाशकिहेतनमोतिनलोकपतीइकतांहरिताँई ॥

छप्पय छन्द ।

उचित भरत वैराग्य इनहिं इंद्रादि न पावहिं ।
विषय भोग संयोग विषे सुर जन्म बितावहिं ॥
प्रगटे जो इक बार पुण्यसब बहुजन्माको ।
यहि वैराग्य विभाग ताहिं हत भाग जनाको ॥७३॥
भवहरे खेद निरवेद तिहँ करे शांत उर भ्रांति हत ।
जो करे निरादर ताहिंकोकहूँनसुखआदर लहत ॥
रवि प्रभाव त्रयोदशो हरहि तिमर उर भ्रांति ।
शांति हेतु स्वजनानको भयो आप अब शांत ॥ ७४ ॥

सोरठा।

भरत शतक वैराग्य, प्रारंभ्यो चुहिणी पुरे।
संप्र पवित्र प्रयाग, सुधा सरे इतिश्री भयो ॥ ७५ ॥

दोहा।

शशि वसुवसु रस शशिवती, दरशासूके माँहि।
संपूरण संपूरणं, भयो ग्रंथ शुभ आहि ॥ ७६ ॥

---

१ प्रयागके समान पवित्र जो ' अमृतसर–नगर ' अथवा प्रयागके समान पवित्र जो यह ग्रन्थ । २ शशि एक वसु वसु आठ आठ रस छः एवं संवत् १८८६ में शशिवाली अर्थात् किंचित् दृष्टचन्द्रवाली जो सिनीवाली नामिका आश्विन मासकी (दर्श) अमावास्या उसदिन यह ग्रन्थ पूर्णरूपसे संपूर्ण हुआ।

इति वैराग्यशतक समाप्त।



श्रीगणेशाय नमः ।

अथ स्तोत्राणि ।

अमृतसरःस्तोत्र ।

श्रीनानकाख्यगुरुणा रचितं पठन्ति ग्रंथं जना युवतयोपि च तेन यत्र ॥ ब्रह्मावबोधगतशोकतया वसंति श्रीरामदासनगरं भज तत्सुबुद्धे ॥ १ ॥

हे श्रेष्ठ बुद्धिवाले पुरुष ! जिस पुण्य स्थलमें नर नारी बाल वृद्ध सबी श्रीगुरुनानकजीके निर्माण किये श्रीगुरु ग्रन्थका पाठकर ब्रह्मात्मतत्त्वको प्राप्त हुए शोक रहित होकर निवास करतेहैं, ऐसे गुरुरामदासके बसाये नगरका तुम भी सेवन करो ॥ १ ॥

संशोभतेऽमृतसरः खलु यस्य मध्ये नाम्ना ततोऽमृतसरो जगति प्रसिद्धम् ॥ यस्यामृत हरति जन्म न नाकनिष्ठं श्रीराम० ॥ २ ॥

जिस नगरके मध्यभागमें एक अमृतका सरभी सुशोभित है इसीलिये उसको लोग अमृतसरभी कहतेहैं जिस सरका अमृत स्वर्गीय अमृतसे भी अधिक

बलवाला है अर्थात् यह जन्म मरणके भयको दूर करता है परन्तु स्वर्गका अमृत नहीं कर सकता इसलिये हे श्रेष्ठ बुद्धिवाले पुरुष ! ऐसे गुरुरामदासनगरका तुम भी सेवन करो ॥ २ ॥

यत्रामृतस्य सरसो हरिमंदिरं वै मध्ये
विभाति कनकेन कृतं विचित्रैः ॥ नाना-
विधैर्मणिगणैर्घटितं च दिव्यं श्रीरा० ॥ ३ ॥

जहां उस अमृतके तालाबके बीच एकस्वर्णमय तथा अनेक प्रकारके मणिगणसे जडित एक दिव्य देदीप्यमान हरिमन्दिर भी बना है ऐसे पवित्रस्थलको हे सुबुद्ध पुरुष ! तुम भी सेवन करो ॥ ३ ॥

आस्ते हरिः सकलपापहरो हि यस्मिन्
साक्षात्स्वमंदिर उदारतराच्छकान्तौ ॥
श्रीग्रन्थनामधृगनंतगृहीतरूपः श्रीरा०॥४॥

एवं जिस उदारतर स्वच्छ कान्तिवाले अपने हरि-मंदिरमें अनेक प्रकारके उपदेशमय स्वरूपोंको ग्रहण करता हुआ 'श्रीगुरुग्रन्थ' इस नामको धारणकर सकल पापोंके हरनेवाले साक्षात् 'हरि' विराजमान हैं ऐसे पवित्र स्थल गुरु रामदास नगरको हे सुबुद्ध पुरुष ! तुम भी सेवन करो ॥ ४ ॥

गायन्ति गानकुशलाः सततं हि यत्र वैरा-
ग्यबोधजनकगुरुशब्दमेव॥शान्तिं व्रजन्ति
हरिमंदिर एव तेन श्रीराम० ॥ ५ ॥

एवं जिस दिव्य मंदिरमें गायनविद्याकुशलरागीलोग प्रतिक्षण ज्ञान वैराग्यादिके बोधक श्रीगुरु नानकदेवके उच्चारण किये शब्दोंका गायन करते हैं तथा उनहीं पवित्र वचनोंको श्रवण कर उक्त मन्दिर गत अनेक नर नारी शांतिको लाभ करते हैं ऐसे दिव्यस्थलको हे सुबुद्ध पुरुष ! तुम भी सेवन करो ॥ ५ ॥

श्वेताश्मसंघटितदीर्घविशालसेतौ ध्यायंति
केचिदपरे विमृशंति यत्र॥पृच्छन्ति केचि-
दितरे प्रवदन्ति तज्ज्ञाः श्रीराम० ॥ ६ ॥

श्वेत पाषाण अर्थात् संगमरमरसे बना हुआ दीर्घ तथा विशाल जो हरिमन्दिरका सेतु (पुल) उस पर बैठकर जहां अनेक लोग ध्यान करते हैं तथा अनेक लोग विचार करते हैं कई एक अधिकारी जहां प्रश्न कर-रहे हैं तथा अनेक विज्ञ लोग उनको उत्तरसे संतुष्ट कर रहे हैं, ऐसे प्रभावशालीगुरु रामदास नगरको हे सुबुद्ध पुरुष ! तुम भी सेवन करो ॥ ६ ॥

सेतुस्थभक्तजनपादरजोभिषेकान्नश्यन्ति

कोटिभवसंचितदुष्कृतानि ॥ दुःखं च यत्र सकलानि हरिप्रसादात् श्रीराम० ॥ ७ ॥

उस हरिमन्दिरके पुलपर निवास करनेवाले हरिभक्त जनोंके चरणोंकी धूलिसे मस्तकपर तिलकमात्रके करनेसे अनेक श्रद्धावान् पुरुषोंके कोटिजन्म जन्मान्तरोंमें किये सकल पाप दूर होते हैं तथा परमेश्वरकी कृपासे वर्तमानकालमें होनेवाले अनेक प्रकारके दुःख भी दूर होते हैं, ऐसे गुरुरामदास नगरका हे सुबुद्ध पुरुष ! तुम भी सेवन करो ॥ ७ ॥

संभाति हाटकमयी निकटे पताका कान्त्या च भानुसदृशी हरिमंदिरस्य। दिव्यातिसुंदरतनुः सुखदा च यत्र श्रीराम०॥८॥

जहां दिव्य स्वरूप हरिमन्दिरके समीप सुन्दर कान्तिवाली देदीप्यमान सूर्य सदृश प्रकाशवाली तथा दर्शनमात्रसे भक्तजनोंके सुखकी जनका स्वर्णमयी चमचमाती दो पवित्र पताका (ध्वजा) विराजमान हैं ऐसे श्रीगुरु रामदासके रमणीय नगरको हे सुबुद्ध पुरुष ! तुमभी सेवन करो ॥ ८ ॥

संभात्यकालपुरुषस्य महच्च यत्र दिव्यं सुमंदिरमनेकसुशिष्यजुष्टम् । मंत्रोपदेशकुशलैः परिरक्षितं च श्रीराम० ॥ ९ ॥

जहां अनेक सुयोग्य शिष्य लोगों करके सेवित तथा गुरुमंत्र उपदेश कुशल शिष्य लोगोंसे परिरक्षित एक परम देदीप्यमान अतिविस्तार वाला अकालपुरुषका मनोहर मन्दिर है ऐसे श्रीगुरु रामदासके पवित्र नगरको हे सुबुद्ध पुरुष ! तुमभी सेवन करो ॥ ९ ॥

चौकीति नाम विमलो गुरुशिष्यसंघः सायं परिक्रमविधौ सतत प्रवृत्तः ॥ संशोभते हि गुरुशब्दमुखश्च यत्र श्रीराम० ॥ १० ॥

जहां गुरुजीके विमल शिष्योंका समुदाय सायंकालमें हरिमन्दिरके परिक्रमण करणार्थ (चौकी) नामसे प्रतिदिन प्रवृत्त होता है तथा शिष्य लोग गुरुजीके शब्दोंका उच्चारण करते हुये जहां शोभायमान होतेहैं ऐसे पवित्र नगरका हे पुरुष ! तुम भी सेवन करो॥१०॥

संराजतेऽमृतसरोवरतीर्थतीरे देदीप्यमानवरमंदिरदिव्यपंक्तिः ॥ नानाकृतिश्च परितोऽतिथयो हि यत्र श्रीराम० ॥ ११ ॥

जहां जिस अमृतके सरोवररूप तीर्थके किनारेपर देदीप्यमान सुंदर मन्दिरोंकी दिव्य परंपरा चारों तरफ विराजमान है तथा जहां उन मन्दिरोंमें अनेक प्रकारके साधु निवास कर रहे हैं ऐसे श्री अमृतसर नामक नगरका हे सुबुद्धपुरुष ! तुमभी सेवनकरो ॥ ११ ॥

ऐरावतीवरनदीसलिलं पवित्रं यत्रामृतस्य झटिति प्रविशद्धि कुंडम् ॥ रूपं स्वनाम च विहाय भवेत्सुधाशु श्रीराम० ॥ १२ ॥

जहां ऐरावती नामक श्रेष्ठ नदीका परम पवित्र पूर्व नाम रूपको त्यागकर उसी समय अमृत होजाताहै ऐसे उत्तमनगरको हे सुबुद्धपुरुष ! तुमभी सेवन करो ॥

ऐरावतीसलिलसंगमदेशपार्श्वे आस्ते भवो भवहरो वटवृक्षछायाम् ॥ आश्रित्य दीर्घसघनां वरदश्च यत्र श्रीराम० ॥ १३ ॥

और जहां ऐरावती नदीके जलसंगम प्रदेशके समीपवर्ती वट वृक्षकी सघन छायाके नीचे संसार चक्रके हारक महादेवजीका स्थान है अर्थात् अनेकप्रकारके वरप्रदायक तथा भवहारक जहां महादेवजी स्वयं विराजमान हैं ऐसे महानगरका हे सुबुद्ध पुरुष ! तुम भी सेवन करो ॥ १३ ॥

तिष्ठन्ति भीमनिकटे सततं हि यत्रोदासीनवर्यमुनयः सजटाविभूत्या ॥ संशोभमानतनुकांतिधरा महांतः श्रीराम० ॥ १४ ॥

और जहां महादेवके स्थानके समीप जटा तथा विभूतिकर संशोभमान शरीरकी कांतिवाले उदासीन

मुनिवर्य महात्मा लोग सदा निवास करते हैं ऐसे उत्तम नगरका हे सुबुद्ध पुरुष ! तुमभी सेवन करो ॥ १४ ॥

कुष्ठावृतंस्वपतिमीशधियाभजंती संस्थाप्य
योषिदशनाय गता गृहीत्वा ॥ आगत्य
सुन्दरतनु स्वपात विलोक्याप्टच्छत्पतिं
च भिषजा खलु केन दिव्यः ॥ १५ ॥

और जहां कुष्ठरोगसे पीडित शरीरवाले अपने प्रिय पतिको ईश्वररूपसे सेवन करनेवाली कोई एक स्त्री अपने पतिको उक्त सरोवर किनारे स्थापन करके भिक्षार्थ ग्राममें गई, मांग कर आई तो देखा कि पतिका शरीर नीरोग स्वच्छ सुन्दर है पतिसे पूँछने लगी कि आपका शरीर किस वैद्यने ऐसा दिव्य बना दिया है १५

देहः कृतो हि भवतां वरमौषधं किं सर्वं
वदस्व कृपयेति शृणुष्व भद्रे ॥ भाग्येन
लब्धमिदमौषधमेव नान्यत्काकः कुपक्ष-
युत एव बलिष्ठकाकैः ॥ १६ ॥

अथवा कौन आपको उत्तम औषध मिला है जिससे रोग दूर हुआ यह सब कृपापूर्वक कहो. पतिने कहा हे कल्याणि! श्रवण कर, मेरे भाग्यसे लाभ हुआ और औषध कोई नहीं है किन्तु यही है एक कुत्सित पक्षोंवाला काक दूसरे काकोंस ॥ १६ ॥

संपीडितोऽत्र पतितः सलिले सुपत्रो
जातः क्षणादिति विलोक्य मयात्र दिव्ये ।
स्नातं जले सकलरोगविहीनदिव्यो
देहो ममाभवदतोऽमृतमेव विद्धि ॥ १७ ॥

पीडित होकर इस सरोवरमें पड़ गया वह पड़ताही श्वेत सुन्दर पक्ष युक्त होकर उडा तो उसको देखकर मैंनेभी इस दिव्य सरोवरमें स्नान किया तो मेरा शरीर भी सकल रोग रहित दिव्य बन गया इसलिये हे भामिनि ! इसको तूभी अमृतस्वरूपही जान ॥ १७ ॥

नान्योऽत्र कश्चन समागत एव वैद्यः सत्यं
ब्रवीमि वचनं कुरु चात्र भक्तिम् ॥ यत्रेत्थ-
मास पुरुषस्य कथास्वनार्य्याश्रीराम० १८॥

सिवाय इसके यहां दूसरा वैद्य कोई नहीं आया है हे प्रिये ! मैं तेरेको सत्य कहताहूँ कि हम लोगोंको इस उत्तम स्थलका सेवन करना चाहिये. एवंभूत जिस दिव्य स्थलमें किसी पुरुषका स्वस्त्रीके साथ विचित्र चरित्र हुआ ऐसे श्रीगुरु रामदास नगरको हे सुबुद्ध पुरुष ! तुम भी सेवन करो ॥ १८ ॥

वासिष्ठभागवतभारतमेव नित्यं शृण्वन्ति
केचिदपरे प्रतिबोधयन्ति॥ पीयूषकुण्डनि-
कटे सुधियश्च यत्र श्रीराम० ॥ १९ ॥

और जहां उक्त अमृतकुण्डके चारों ओर वासिष्ठ भागवत तथा महाभारतादिकी कथा अनेक श्रोतागण श्रवण करतेहैं तथा अनेक बुद्धिमान् वक्ता लोग बोधन करते हैं ऐसे श्रीगुरुरामदासके नगरको हे पुरुष! तुम भी सेवन करो॥ १९॥

स्नात्वा सुधासरसि विष्णुशिवादिपूजां
कुर्वन्ति केचिदितरे मनसो निरोधम्॥
स्तोत्राणि पावनतमानि पठन्ति यत्र
श्रीराम०॥ २०॥

एवं जहां उक्त सुधाके सरोवरमें स्नान करके अनेक उपासक पुरुष विष्णुशिवादिका पूजन कर रहेहैं तथा दूसरे कई एक पुरुष जहां मनोनिरोध कर रहे हैं एवं और कई एक पुरुष जहां पवित्र स्तोत्रोंका पाठ कर रहे हैं ऐसे पवित्रतम क्षेत्र श्रीगुरु रामदासजीके नगरका हे सुबुद्ध पुरुष! तुम भी सेवन करो॥ २०॥

रात्रौ सदामृतसरोवरतीर्थतीरे कृत्वा सदा
हि विमृशन्ति विवेकनिष्ठाः॥ किं ब्रह्म का
प्रकृतिरात्मवपुश्च कीदृक्पृच्छन्ति केचि-
दिति केऽपि वदन्ति सन्तः॥ २१॥

जहां अनेक विवेकीलोग रात्रिकालमें अमृतसरोवर नामक तीर्थके किनारे पर सभा करके अर्थात् मिलकर बैठके अनेक प्रकारके विचार करतेहैं कि ब्रह्म क्या है ? प्रकृतिका स्वरूप कैसा है ? जीव आत्माका स्वरूप कैसा है ? इत्यादि अनेक तरहके अनेक पुरुष प्रश्न करते हैं और संत लोग उनके उत्तर देते हैं ॥ २१ ॥

सत्यादिचिह्नमिति केपि वदन्ति तज्ज्ञा
ब्रह्मास्ति हेतुरखिले हि विकारमात्रे ॥ एवं
च केचन वदन्ति महानुभावा देशादिभिः
परिमितं न यदेव तद्धि ॥ २२ ॥

उन पूँछनेवालोंके उत्तरमें कोई एक ज्ञानी लोग ब्रह्मको सच्चिदानन्दस्वरूप बतलाते हैं दूसरे कई एक महानुभाव लोग ब्रह्मको यावद् विकार मात्रका अभिन्न निमित्त उपादान कारण बतलातेहैं, एवं और कई एक महानुभाव लोग ब्रह्मको देश काल वस्तु परिच्छेदसे रहित कहते हैं ॥ २२ ॥

मायां त्विति श्रुतिबलात्प्रकृतिं च मायां
केचिद्वदन्ति कुशला अपरे गुणानाम् ॥
साम्यस्थितिं प्रकृतिमेव वदन्ति धीराः
शक्तिं परस्य पुरुषस्य वदन्ति चान्ये ॥२३॥

ऐसेही प्रकृतिके प्रश्नके उत्तरमें कई एक लोग 'मायां तु प्रकृतिं विद्यात् मायिनं तु महेश्वरम्' इस श्रुतिवचनके अनुरोधसे मायाहीको प्रकृति बतलातेहैं और दूसरे विद्वान् लोग सांख्यमतके अनुसार सत्त्वादि गुणोंकी साम्य अवस्थाहीको प्रकृति बतलातेहैं, एवं और कई एक विद्वान् लोग परपुरुष ईश्वरकी शक्तिहीको प्रकृति मानते हैं ॥ २३ ॥

आभासमेव तु चितः प्रवदन्ति जीवं
केचित्परे सुमनसः प्रतिबिम्बमाहुः ॥
कूटस्थलिङ्गतनुचित्प्रतिबिम्बसंघं
केचिद्वदन्त्यसुधृतेरपरे वदन्ति ॥ २४ ॥

एवं जीवात्माके प्रश्नके उत्तरमें कई एक विद्वान् लोग चेतनके आभासहीको जीव मानते हैं दूसरे कईएक शुद्ध बुद्धिवाले लोग प्रतिबिम्बको जीवस्वरूप कहते हैं और कई एक विचारकुशल लोग कूटस्थ लिङ्गशरीर तथा चेतनका प्रतिबिम्ब इन सबके समुदायको जीव बतलातेहैं ऐसेही और कई एक विचारशील लोग प्राणधारण करनेसे चेतनकी जीवसंज्ञा कहते हैं ॥ २४ ॥

इत्यादिकं बहुविधं खलु यत्र कुत्र मित्रैः
सुतैः स्वजनकैश्चरमाश्रमस्थैः ॥ वाक्यान्नराः सुमनसः प्रवदन्ति यत्र श्रीराम०॥२५

इत्यादि अनेक प्रकारके विचारपूरित वाक्योंको जहां बुद्धिमान् लोग जहां तहां बैठकर अपने मित्रोंके पुत्रोंके सम्बन्धियोंके तथा संन्यासियोंके साथ बोल चाल करते हैं ऐसे श्रीगुरुरामदासके पवित्रनगरको हे सुबोध पुरुष ! तुम भी सेवन करो ॥ २५ ॥

स्तोत्रं पठन्ति य इदं सततं विशुद्धाः
श्रद्धां विधाय नियमाद्गुरुभक्तियुक्ताः ॥
रागादिदोषरहिताः पुरुषाः सदैव ते श्रीसु-
धासरसि वासमतो लभन्ते ॥ २६ ॥

जो लोग श्रद्धाभक्तिपूर्वक प्रतिदिन शुद्ध होकर इस स्तोत्रका नियमपूर्वक पाठ करते हैं वे लोग गुरुभक्ति युक्त तथा रागादि दोष रहित हुये सदाही सुखपूर्वक श्रीअमृत-सर नामक नगरमें निवासको लाभ करते हैं ॥ २६ ॥

इति श्रीमदुदासीनवर्यगंगारामशिष्येणोदासीनात्मस्वरूपेण विरचितं श्रीमदमृतसरःस्तोत्रं समाप्तम् ॥



ज्ञानदीपाख्यं स्तोत्रम् ।

ॐ ॥ परीक्षां विधाय प्रमाणैर्विरक्तो न मे
स्याद्विनाशीति निष्ठां प्रयातः ॥ गुरुं श्रोत्रियं
ब्रह्मनिष्ठं च गत्वा यदाप्नोति तत्त्वं तदेवाह-
मस्मि ॥ १ ॥ स विद्वान्प्रशान्तं विनेयं प्रपन्नं
निरीक्ष्य प्रसन्नः कृपाधीनचित्तः ॥ अधिष्ठान-
मस्य प्रपञ्चस्य यद्धि वदेन्नित्यशुद्धं तदे-
वा० ॥ २ ॥ अवस्थासु सर्वासु भात्येकरूपं
स्वभास्यैर्नभातीन्द्रियाद्यैःसदैव ॥ घटाद्यैर्यथा
भानुरात्मस्वरूपं परम्बोधरूपं तदे० ॥ ३ ॥
निषिध्याखिलं दृश्यजातं निषेध्यं निषेधाव-
सानं स्वतोभासमानम् ॥ मनोवागतीतं परा-
नन्दरूपं परं ज्योतिराद्यं तदेवा० ॥४॥ अहंतां
परित्यज्य देहे ह्यनित्ये यथा स्वप्नदृष्टे प्रबोधं
प्रयाति ॥ तथा तां परित्यज्य जाग्रच्छरीरे
भवेद्ब्रह्म यत्नात्तदेवा० ॥५॥ मुमुक्षाप्रशान्तिं
यदा स्यप्रयाति न बन्धो न मोक्षोऽनुभूत्यास्ति
यस्य ॥ न जन्मापि मृत्युर्न पुण्यं न पापं
समाधिस्तदन्यस्तदेवा० ॥ ६॥ श्रुतं ब्रह्मसृष्टेः
पुरा भेदशून्यं सदेकं यथा वर्तमानेऽपि काले ॥

तथैवास्ति मोक्षावसानं न यस्मिन् विभेदोस्ति किञ्चित्तदे० ॥ ७ ॥ यदज्ञानतो दुःखराशौ निमज्जेत्सुखाब्धौ च यस्य प्रबोधेन सद्यः॥ भवेत्कृत्यशून्योऽथ यस्यानुभूत्या सदा शुद्धरूपं तदे० ॥८॥ इहामुत्र भोगाद्विरक्तः परात्मानुसंधाननिष्ठः पुमाञ्छुद्धबुद्धिः॥ तमोहीनचक्षुस्स्तवं ज्ञानदीपं पठेद्यो नभूयोवसेन्मातृकुक्षौ९

इति श्रीमदुदासीनवर्यगंगारामाशिष्येणोदासीनात्मस्वरूपेण विरचितं ज्ञानदीपाख्यं स्तोत्रं समाप्तम् ॥

श्रीकृष्णाष्टकम् ।

आनंदलेशमनुगत्य भवन्ति यस्य ब्रह्मादयोऽपि सुखिनः सकला हि देवाः ॥ आनंदसिन्धुमखिलं त्वनुभूय वाक्यात्कृष्णं भजामि चितिरूपमजं तमेकम् ॥ १ ॥ अर्केन्दुवह्निवचने सततं प्रशान्ते सर्वो जनो व्यवहृतिङ्कुरुतेऽथ येन॥ सुप्तो विलोपरहितं मनसि प्रलभे कृष्णं० ॥ २ ॥ यंज्योतिषां सुरगणा विदुरप्रमेयं दीपं मनोऽपि मनसो नयनस्य नेत्रम्॥ श्रोत्रस्य यः श्रवणमेव भवेत्परात्मा कृष्णं० ॥ ३ ॥ यस्या-

प्रबोधवशतो निरयप्रवेशं मूढा व्रजन्ति बहुयोनिषु चापि दुःखम् ॥ बोधेन यस्य लभते न च दुःखगन्धं कृष्णं० ॥ ४ ॥ प्राणेन जीवति नरो नहि कश्चिदेव नापानतोपि सततं त्वितरेण येन । सर्वोपि जीवति जनः श्रुतिसिद्धमीशं कृष्णं० ॥५॥ नेदिष्टमेव विदुषामनुभूतिमानात् प्रत्यक्तया स्फुरणतो भुवनप्रकाशात्॥ दूरात्सुदूरतममेव बहिर्मुखानां कृष्णं० ॥ ६ ॥ पद्मोद्भवं स्वतनयं प्रहिणोति वेदान् योग्यस्य धावति भयेन च मृत्युरेषः ॥ अग्निर्भयेन तपति द्युमणिश्च यस्य कृष्णं० ॥ ७ ॥ यो वेत्ति वेद्यमखिलं न च वेदितान्यो यस्यास्ति कश्चिदपि वेदकृदेवयश्च ॥ यं वेदवेद्य इति वेदविदो वदंति कृष्णं० ॥ ८ ॥ बोधादिमंपठतियोऽमलधीः सदैव भक्त्या स्तवं सुखतमे प्रणिधाय चित्तम् ॥ कृष्णे परे विमलबोधघने प्रशांते बन्धं विधूय पुरुषो विशते स कृष्णम् ॥ ९ ॥

इति श्रीमदुदासीनवर्य्यगंगारामशिष्येणोदासीनात्मस्वरूपेण विरचितं श्रीकृष्णाष्टकं समाप्तम् ।

श्रीरामाष्टकम् ।

यस्मादुदेति निखिलं स्थिरजङ्गमं यो
वाचां धियां च विषयो न भवेत्सदैव ॥
यस्मिन्स्थितो न लभते पुनरेव जन्म तं
राममद्वयमनन्तमनादिमीडे ॥ १ ॥ कोशान्
विहाय सकलान्परिशेषमात्रं जानन्ति यं
विमलबोधदृशा महान्तः ॥ ब्रह्मेतिवेदवच-
साग्रुरुदेवभक्तास्तंराम० ॥ २ ॥ त्यक्त्वा
तनुं यममलं प्रविशंति तज्ज्ञा ध्यायन्ति यं
शिवविरञ्चिमुखाश्च देवाः ॥ पश्यन्ति योग-
निरता विजितेन्द्रिया यं तं राम० ॥ ३ ॥
तावत्त्वलीकमपि सत्यतया विभात्यधिष्ठा-
नमस्य विदितं न भवेद्धि यावत् ॥ बोधेन
यस्यनविभातियथाखनैल्यं तं राम० ॥ ४ ॥
भासार्कसोमचपलानलतारकाणिलोहादि तम-
मनलेन यथा विभान्ति॥यस्यानुभानमुपयांति
मनो वचांसि तंराम० ॥ ५ ॥ सूर्येन्दुरूपनयने
चरणौ च भूमिः प्राणोऽथ यस्यपवनो हृदयं
च विश्वम् । मूर्द्धानलो भवति वाग्विवृताश्च
वेदास्तं राम०॥६ ॥ सृष्ट्वाप्रविश्य तदनुस्वयमे
वसच्चत्यच्चाभवच्चऋषिभिः सततंविमृग्यः ॥

लब्ध्वारसंयममलं सुखमाप्नुवंति तं राम०॥७॥ यश्चेतनश्चितिमतां मतिलोचनानां नित्यश्च योगगणशब्दमुखब्रुवाणाम् ॥ सत्ताप्रदोनतुसतामनुभूतसिद्धस्तंराम० ॥ ८ ॥ ज्ञानात्पुमान् विमलधीर्विरतिं प्रयातो जन्यात् स्वकर्मफलतो ध्रुवनाशभाजः ॥ स्तोत्रं पठेद्यइहराघवभक्तियुक्तः पातुंनवै स लभते जननीपयांसि ॥९॥

इति श्रीमदुदासीनवर्य्यगङ्गारामशिष्येणोदासीनात्मस्वरूपेण विरचितं श्रीरामाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

ब्रह्म निरूपणं स्तोत्रम् ।

आराध्यराममखिलेश्वरमादिदेवं प्राप्येति पृच्छतिगुरुंकिमिदञ्चकोहम् ॥ तं शिष्यमाह कृपयेतिगुरुर्महात्मा ब्रह्मेदमस्तिसकलं त्वमहं तथैव ॥ १ ॥ अग्निर्यथाहिभुवनंगतएकआस्ते नानाकृतिः स्थिरचरं पुरुषस्तथातः ॥ जुष्टां सदेति मुनिभिर्धिषणां गृहाण ब्रह्म०॥२॥चंद्रो यथा बहुविधो जलपात्रभेदादेकस्तथा मतिषु भाति परः प्रविष्टः॥तेषां भिदास्ति जगतो न सदेति विद्धि ब्रह्म० ॥ ३ ॥ सर्वासु दिक्षु च विदिक्षु कणाः प्रवृत्तावह्नेर्यथापि नभवंति ततो विभिन्नाः ॥ जीवास्तथात्मन इदं च ततोव-

बुद्धं ब्रह्म० ॥ ४ ॥ द्रष्टास्तिनान्य इत आत्मन-
एषदेवः सर्वेषु तिष्ठति चिदात्मतया विभातः ॥
आत्मैव सर्वमितिवेदवचोस्ति तस्माद्ब्रह्म०
॥ ५ ॥ आत्मैव ते यमयितावपुरस्यसर्वं शास्ता
प्रविश्यसकलस्यजनस्य योहि ॥ इद्धांशु-
मांस्तपति येन तदेव शुद्धं ब्रह्म० ॥ ६ ॥ एकं
यमूचुरमलंबहुधास्वबुद्ध्याप्राज्ञाश्चतुर्मुखयमे-
न्द्रहुताशरूपम्॥ भेदं प्रकल्प्य तत एव सदेति
पश्य ब्रह्म० ॥ ७ ॥ नारायणात्मकमिदं जगदा-
हवेदो जातंयतोभवति तत्र ततोविभिन्नम् ॥
तोयात्तरङ्गमिववेद्मिसदेतितस्माद् ब्रह्म० ॥ ८ ॥
ज्ञानादिदं पठतियः खलुशुद्धबुद्धिः स्तोत्रं मनः
परतरे प्रणिधायनित्यम् ॥ ज्ञात्वापरात्परत-
रम्परिमुच्य बन्धं सद्यः पुमान्भवति सोऽथ
परात्मरूपः ॥ ९ ॥

इति श्रीमदुदासीनवर्यगङ्गारामशिष्येणोदासीनात्मस्वरूपेणविर-
चितमखिलब्रह्मनिरूपणं नाम स्तोत्रं समाप्तम् ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
'लक्ष्मीवेंकटेश्वर' स्टीम्-प्रेस,
कल्याण-बम्बई.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
'श्रीवेंकटेश्वर' स्टीम्-प्रेस,
खेतवाडी-बम्बई.

